श्री धन्यकुमार चरित्र

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

भगवान श्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प नं. २६९

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

श्री भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

: हिन्दी अनुवादकर्ता :

स्व. पंडित उदयलाल कासलीवाल

बड़नगर

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति प्रत : १००० वि.सं. २०७५ ई.स. २०१९

श्री धन्यकुमार चरित्र (हिन्दी) के
✽ स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता ✽
छगनलाल कालीदास वाधर परिवार, जामनगर
हस्ते आत्मार्थी भानुबेन, विद्याबेन एवं
जसवंतीबेनके स्मरणार्थ

श्री धन्यकुमार चरित्र (हिन्दी) के
✽ स्थायी किमत कम करनेवाले पुरस्कर्ता ✽
डो. पुष्पाबेन वी. गांधी
हस्ते डो. वी. के. गांधी, अमदावाद

સહજ ચિદાનંદ.

मूल्य रू. 10=00

: मुद्रक :
स्मृति ओफसेट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०

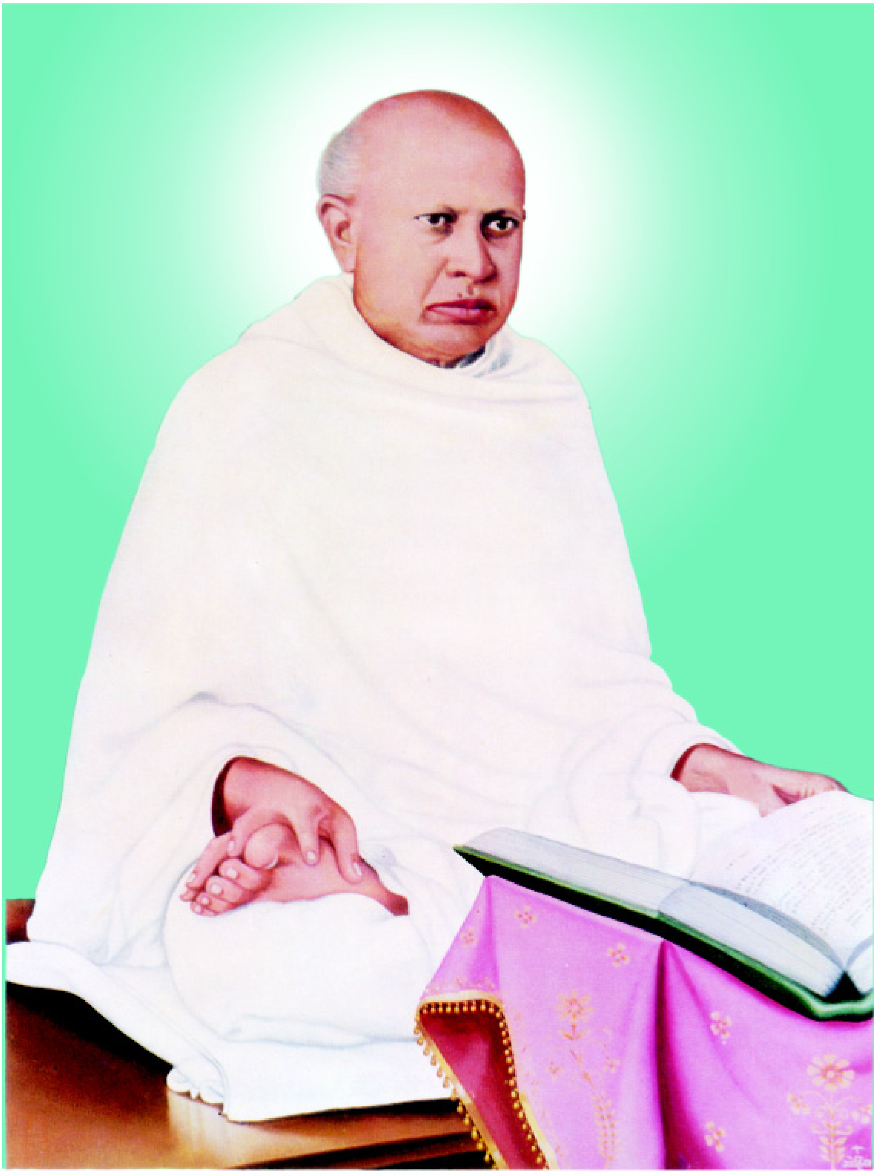

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

प्रकाशकीय निवेदन

तीर्थंकर, मुनिभगवंत एवं साधक धर्मात्माओंके आत्महित हेतुसे जीवनचरित्र जाननेकी हमारे मुमुक्षु समाजमें जो कोई जिज्ञासा दिखलाई देती है, वे परमपूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके अध्यात्म उपदेशके प्रतापसे और स्वानुभूति परिणत प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माता चंपाबेनके पुनित प्रतापसे ही है। यह दोनों धर्मात्माओंके परम प्रतापसे ही श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढकी ओरसे सत्-साहित्य प्रकाशित होता रहता है। उसी शृंखलामें यह 'धन्यकुमार चरित्र'की हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित करते हर्ष हो रहा है।

तीर्थंकरादि महापुरुषोंके प्रथमानुयोगकथित जीवनचरित्रसे आत्मसाधना और उनके फलका यथार्थ ज्ञान होता है। सुवर्णपुरीके भव्य जिनालयोंमें प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके मार्गदर्शनमें उत्कीर्ण तीर्थंकरादि महापुरुषोंके मनोज्ञ चित्रपट मुमुक्षु जीवोंको साधना और उनके फलका चित्रमय दर्शन कराके उन महापुरुषोंके जीवनचरित्र जाननेकी मंगल प्रेरणा देती है।

प्रस्तुत चरित्रमें धन्यकुमारके पूर्वभवमें देवद्रव्यके ग्रहणरूप पापके फलका, पात्रदानरूप पुण्यके फलका और अंतमें मुनिधर्मरूप वीतरागभावके फलका निरूपण करते हुए पतितसे पावन होनेकी प्रक्रियाका वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत चरित्र ग्रन्थका प्रकाशन सूरतसे श्री मूलचन्द किशनदास कापड़ियाने सन् १९६५ किया था। –गुजराती संस्करणका अनुवादकार्य पंडित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है तदर्थ उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते है। मुद्रणकार्यके लिये स्मृति ऑफसेटके आभारी है।

पवित्र जिनमार्गकी आराधनाकी प्रेरणादायक इस चरित्र ग्रन्थका अध्ययन कर सभी जीव निज आत्महितकी साधनामे वृद्धिगत हो यही भावना सह...

पूज्य बहिनश्रीकी
१०६वीं जन्मजयंती
दि. १७-८-२०१९

साहित्यप्रकाशक समिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ (सौराष्ट्र)

❀

जैन पौराणिक कथाओंका तात्पर्य

चारों अनुयोगका सार, सर्व सिद्धांतका सार, दिव्यध्वनिका सार क्या है? वह बताया जाता है :—

भगवानकी वाणीमें—चारों अनुयोगमें यह आया है कि ''जो जिनेन्द्र है वह ही आत्मा है''—ऐसा मनन करो। आत्माका सर्वज्ञ और वीतराग होनेके पश्चात् जो वाणीमें आया है वह ऐसा आया कि, ''हम जो स्वरूपसे हैं उतना ही स्वरूप तुम हो और तू जो स्वरूपसे है, वह स्वरूपसे हम हैं''— परमेश्वरके स्वरूपमें व आत्माके स्वरूपमें कुछ फरक नहीं है। दो वस्तुस्वरूपसे भिन्न है, पर भावस्वरूपसे भिन्न नहीं हैं।

जिन आत्माओंने स्वयंके स्वरूपको वीतराग ज्ञाता-दृष्टारूपसे जानकर भेदका लक्ष्य छोड़कर अभेद चैतन्यका साधन किया, उन आत्माओंकी कथाको पुराण (जैन पौराणिक कथा) कहते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि साधना करनेवालोंका वर्णन पुराणोंमें (जैन पौराणिक कथाओंमें) है। उन सब वर्णनमें क्या आता है? कि ये सभी शलाका पुरुषोंने 'वीतराग प्रभु जैसा ही मैं आत्मा हूँ, उनको मोक्ष प्रकट हो गया है व मेरा मोक्ष स्वभावमें भरा हुआ है'—''ऐसे आत्मा-तत्त्वको वीतराग परमात्मा जैसा'' उन शलाका पुरुषोंने जाना था वह ही प्रथमानुयोग (कथानुयोग)में कहनेका तात्पर्य—सार है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः।

भट्टारक श्रीसकलकीर्तिजी विरचित

श्री धन्यकुमार चरित्र

(भाषानुवाद)

श्री शोभित तुव वदनशशि, हरै जगतजन ताप।
इह कारण पदपद्मतुव, नमहुँ नाथ! गतपाप॥

शिव-सुखदायक आपको, कहैं जगत में लोक।
क्यों न हरौ भव-गहनवन, श्रमण नाथ! हे शोक॥

अखिल अमित भूलोक में, तुम सम नहीं दयाल।
दयापात्र फिर क्यों न मैं? विभो! दीनदयाल॥

आनन्दकन्द जिनेश! अब, गह करके मम हाथ।
अतिगम्भीर जगजलधि से, करौ पार जननाथ!॥

सकलकीर्ति मुनिराज ने, संस्कृत में सुविशाल।
विरचौ धन्यकुमार को, चरित अमित गुणमाल॥

तिहिं भाषा मैं अल्पधी, लिखूं स्वपर सुख हेतु।
इस महान शुभ कार्य में, नाथ! बनहु सुखसेतु॥

पहला अधिकार

मंगलाचरण

गर्भकल्याण, जन्मकल्याण, दीक्षाकल्याण, ज्ञानकल्याण और निर्वाणकल्याण के अनुभोक्ता, त्रिभुवन के स्वामी, शिवरमणी के नाथ तथा गुणों के समुद्र श्री वर्द्धमान जिनभगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥1 ॥

अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित, आरम्भ में धर्मतीर्थ के प्रवर्तन करनेवाले, धर्म के स्वामी तथा अनन्त गुणों के आकर श्री वृषभनाथ भगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥2 ॥

सम्पूर्ण मंगल के करनेवाले, लोकश्रेष्ठ, सज्जन पुरुषों के लिये आश्रयस्थान तथा जगत के हित करनेवाले शेष समस्त तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥3 ॥

मनुष्य, देव और विद्याधरों के अधिपति तथा गणधरादि से विशोभित, ढ़ाईद्वीप में विहार करनेवाले जो श्री सीमन्धरस्वामी प्रभृति मोक्षमार्ग के प्रकाश करनेवाले बीस तीर्थंकर हैं, उन्हें विनत मस्तक से मैं नमस्कार करता हूँ ॥4-5 ॥

ये उपर्युक्त तीर्थंकर तथा और जो त्रिकाल में होनेवाले हैं, मेरे द्वारा नमस्कार तथा स्तवन किये हुए वे सब मेरे आरम्भ किये हुए काम की सिद्धि के लिये हों ॥6 ॥

ज्ञानावरणादि आदि कर्म तथा शरीर से विरहित सम्यक्त्वादि आठ महागुणों से विभूषित, तीन लोक के शिखर पर आरूढ़, इन्द्र-धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि से नमस्कार किये हुए, अनन्त गुणों के स्थान तथा उत्तम गुणों की अभिलाषा करनेवाले भव्य पुरुषों के

द्वारा ध्यान करनेयोग्य सिद्ध भगवान का मैं प्रतिदिन स्मरण करता हूँ ॥7-8 ॥

छत्तीस गुण विराजमान, दर्शनाचार, ज्ञानावरणादि प्रभृति पंचाचार के परिपालन करने में तत्पर, त्रिभुवन के द्वारा अभिवन्द्यनीय तथा शिष्यों पर दया करनेवाले आचार्यों के लिये मैं अभिनन्दन करता हूँ ॥9 ॥

जो अपने जन्मरूप आताप के नाश करने के लिये अंग पूर्वरूप पीयूष रस का स्वयं पान करते हैं तथा और भव्य जीवों को पिलाते हैं, ऐसे उपाध्यायों का अपने आत्मस्वरूप की समुपलब्धि के लिये स्तवन करता हूँ ॥10 ॥

जो अखण्ड रत्नत्रय तथा आश्चर्यजनक योग का त्रिकाल साधन करते हैं, वे साधुराज शिव प्राप्ति के लिये मुझे शक्ति प्रदान करें ॥11 ॥

सम्पूर्ण ऋद्धि तथा मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान से विभूषित, गुणों के समुद्र, त्रिभुवनाधिपति से वन्दनीय तथा पूज्यनीय और सम्पूर्ण अंगों की रचना करने में सचमुच वृषभसेन प्रभृति गौतमगणधर पर्यन्त सर्व गणधरादि मेरे द्वारा स्तवन किये अपनी-अपनी बुद्धि के प्रदान करनेवाले हो ॥12-13 ॥

सम्पूर्ण सिद्धान्तरूप वारिधि के पार को प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अनर्घ्य रत्न से अलंकृत, परिग्रह रहित तथा दिशारूपी वस्त्र के धारण करनेवाले और कितने कुन्दकुन्दादि विद्वान कविराज इस संसार में प्रसिद्ध हुए हैं तथा गुणों से गुरुत्व पद को धारण करनेवाले हैं। उन सब उत्तम-उत्तम महात्माओं का मैं स्तवन करता हूँ ॥14-15 ॥

ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्व तथा प्रकीर्णरूप शरीर के धारण

करनेवाली, सम्यग्दर्शनादि रत्नालंकार से विराजित, सप्त तत्त्व-नव पदार्थ के वर्णन से युक्त, अनन्त सुख की देनेवाली, गुणों से विभूषित जिनभगवान के मुख कमल से उत्पन्न तथा गणधर भगवान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त भारती (सरस्वती) मेरे द्वारा स्तवन की हुई तथा नमस्कार की हुई सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति के कारण अथवा सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के लिये हो ॥16-17 ॥

बाह्य तथा अन्तरंग परिग्रह से विनिर्मुक्त, योग्य उत्तम-उत्तम गुणों से विभूषित, सम्पूर्ण भव्य पुरुषों के हित करने में तत्पर, संसाररूप समुद्र के पार को प्राप्त हुए तथा सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के साधन करनेवाले धन्यकुमार प्रमुख बाकी के सब योगिराजों को उनके गुणों की समुपलब्धि के लिये स्तवन करता हूँ ॥18-19 ॥

ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा

इस प्रकार उत्तम-उत्तम मंगल करनेवाले उत्कृष्ट तीर्थंकर भगवान, जिनवाणी तथा आचार्यादि साधुओं का स्तवन तथा अभिवन्दन करके मंगलसिद्धि, अपने आरम्भ किये हुए की सिद्धि, विघ्ननाश, मोक्षसम्प्राप्ति तथा कर्मनाश प्रभृति कार्यों की सिद्धि के लिये अपने और दूसरों के हित की इच्छा से-उत्तम वैश्य कुलदीपक तथा सर्वार्थसिद्धि में जानेवाले धन्यकुमार का शुभ और पवित्र चरित्र निर्माण करूँगा ॥20-22 ॥

जिस चरित्र के सुनने से भव्य-पुरुषों के रागरूप शत्रु तो नाश होंगे और संवेग तथा समाधि आदि गुणसमूह समुद्भूत होंगे ॥23 ॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं इस धन्यकुमार के चरित्र के द्वारा-स्वर्ग की सम्पदा के सुख का कारण बड़े-बड़े उत्तम पात्रों के दान का शुभ फल कीर्तन करूँगा ॥24 ॥

यही कारण है कि—धन्यकुमार केवल पात्रदान के फल से राज्य सम्पदा से विराजित तथा स्वर्ग की लक्ष्मी का उपभोग करनेवाला हुआ ॥25 ॥

ग्रन्थारम्भ

इस विशाल वसुन्धरा मण्डल पर जम्बूवृख से उपलक्षित लाख योजन विस्तारवाला, तथा समुद्र से वेष्टित गोलाकार जम्बूद्वीप है। उसके मध्य में अत्यन्त मनोहर लाख योजन ऊँचा और जिनमन्दिर, देव तथा देवांगनाओं से शोभायमान सुवर्णमय सुमेरु शैल है ॥26-27 ॥

उसके दक्षिण भाग में अतिशय सुनदर तथा विद्याधर मनुष्य और देवताओं से शोभायमान धनुषाकार उत्तम भरतक्षेत्र है। उसके ठीक बीच में अत्यन्त हृदयहारी, धर्म के सम्पादन का कारण, विद्वान तथा उत्तम उत्तम कुल में समुत्पन्न धर्मात्मा पुरुष तथा जिन भगवान आदि से विभूषित आर्यखण्ड है ॥28-29 ॥

उसमें उत्तम-उत्तम मनुष्यों से पूण्र, ग्राम, खेट तथा पूर आदि से सुन्दर, स्वर्ग और मोक्ष की समुपलब्धि का हेतुभूत अवन्ती नाम देश है। जिसमें जगत के उपकार करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, साधु, गणधर तथा केवलज्ञानी ये सब अपनी-अपनी विभूति के साथ विहार करते हैं ॥30-31 ॥

जहाँ-योगीन्द्र (साधु), जिनालय तथा धर्मात्माओं से पुर, पत्तन, खेट, ग्राम, गिरि तथा भुवनादि शोभायमान हैं। जिस देश में उत्पन्न हुए कितने बुद्धिमान पुरुष तो तपश्चरण द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं, कितने सर्वार्थसिद्धि का तथा कितने ग्रैवेयकादि का साधन करते हैं ॥32-33 ॥

कितने विचक्षण पुरुष सर्वज्ञ भगवान की परिचर्या के द्वारा सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं। कितने इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं तथा कितने दान के फल से भोगभूमि में जाते हैं। जिस देश में-सम्पूर्ण अभ्युदय का हेतुभूत श्री जिन भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म, श्रावक, मुनि तथा सुचतुर पुरुषों के द्वारा प्रवर्तता है ॥34-35॥

उसी धर्म के द्वारा अवन्ती निवासी भव्यपुरुष निरन्तर पद-पद में सुख, उत्तम-उत्तम वस्तु तथा सम्पत्ति को प्राप्त होते हैं। जिस देश में-धर्मात्मा पुरुष अपने अनुकूल आचार तथा गुणों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तक का साधन करते हैं तो उस देश में और-और सामान्य विषय के साधन की हम कहाँ तक कहैं? ॥36-37॥

उसी अवन्ती देश के बीच में नाभि के समान सुविशाल-विद्वान, धर्मात्मा, उन्नत-उन्नत चैत्यालय तथा महोत्सव से मनोहर उज्जयिनी नाम पुरी है। वह बड़े-बड़े उन्नत गोपुर, प्राकार, खातिका तथा सुभटों से युक्त होने से लोक में अयोध्या के समान शत्रुओं से अलंघनीय ज्ञात होती है ॥38-39॥

जिस नगरी में-श्रावक तथा श्राविकाओं से पूर्ण, जिन प्रतिमाओं से पूर्ण, जिन प्रतिमाओं से सुन्दर ऊँचे-ऊँचे जिन मन्दिर वाद्य तथा धनवान लोगों से शोभायमान हैं। जिसमें-धर्मात्मा पुरुष प्रातःकाल ही शय्या से उठकर निरन्तर सामायिक, स्तवन तथा ध्यानादि से उत्तम धर्म का सम्पादन करते रहते हैं ॥40-41॥

और अपने गृह में तथा जिनालय में तीर्थंकर भगवान की पूजन करके मध्याह्न समय में पात्र-दान के लिय गृहद्वार पर साधुओं का समवलोकन करते रहते हैं। तथा दिनभर में उत्पन्न हुए पापकर्मों के विनाश के लिये और शुभ कर्म की समुपलब्धि के लिये शुद्धिपूर्वक सामायिक तथा महामन्त्र का संचिन्तवन करते हैं ॥42-43॥

इसी प्रकार और-और शुभाचरण व्रत तथा शीलादि पालन तथा पर्व तिथि में उपवास पूजनादि के द्वारा पुरवासी लोग धर्म का सेवन करते हैं। पश्चात् उसी के फल से उन्हें इन्द्रियों से उत्पन्न होनेवाले सुख, भोगोपभोग, सम्पत्ति, सुन्दर स्त्रियाँ तथा बालक अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होते हैं ॥44-45 ॥

अहो! देवता लोग भी शिव-सुख की सम्प्राप्ति के लिये जिस उज्जयिनीपुरी में अपने अवतार होने की इच्छा करते हैं अथवा और कोई ऊँचे पद की प्राप्ति के लिये भी; तो उस पुरी का और क्या उत्तम कीर्तन होगा? इत्यादि वर्णन से उपलक्षित उज्जयिनीपुरी में प्रतापी, धर्मबुद्धि तथा धर्मात्माओं से अत्यन्त अनुराग का करनेवाला अवनिपाल नामक राजा है ॥46-47 ॥

और सरल-हृदय धनपाल नाम एक वैश्य रहता है। तथा शुभ-शुभ लक्षणों से विराजित प्रभावती नाम उसकी भार्या है। उन दोनों के-परस्पर में अत्यन्त प्रेम करनेवाले तथा गुण और सुन्दर-सुन्दर लक्षणों से समान देवदत्त प्रभृति सात पुत्र हुए। उनमें कितने बालक तो अक्षराभ्यास करने लगे और बाकी के बड़े पुत्र धन सम्पादन के लिये व्यापार करने लगे ॥48-50 ॥

पश्चात् किसी दिन प्रभावती अन्तिम चतुर्थ स्नान करके प्राणनाथ के साथ-साथ शय्या में सोई हुई थी, सो उसने शुभोदय से रात्रि के पिछले प्रहर में अपने गृहद्वार में प्रवेश करते हुये उन्नत वृषभ, कल्पतरु तथा कान्तिशाली चन्द्रादि शुभ ग्रहों को देखें। उसे स्वप्न देखने से बहुत आनन्द हुआ। पश्चात् प्रातःकाल होते ही शय्या से उठी और सब धार्मिक क्रियाएँ करके स्वामी के पास गयी और अपनी मधुर-मधुर वाणी से पुत्र के अभ्युदयसूचक देखे हुए शुभ स्वप्नों को निवेदन किये।

स्वप्न के सुनने से धनपाल को भी बहुत सन्तोष हुआ। तत्पश्चात् वह कहने लगा—प्रिये! इन शुभ स्वप्नों के फल से तो मालूम होता है कि तुम्हें दानी, ऐश्वर्य का उपभोग करनेवाले, उत्तम वैश्यकुल रूप गगनमण्डल में गमन करनेवाला सूर्य तथा अपने सुन्दर-सुन्दर गुण और उज्ज्वल सुयश के द्वारा त्रिभुवन को धवलित करनेवाले महान पुत्र-रत्न की समुपलब्धि होगी।

प्राणनाथ के वचनों से प्रभावती को ठीक वैसा ही आनन्द हुआ, जैसा खास पुत्र की सम्प्राप्ति से होता है। इसके बाद फिर गर्भ के शुभ चिह्न प्रगट दिखायी देने लगे और क्रम से जब नव महीने पूर्ण हुए, तब पुण्यकर्म के उदय से प्रभावती ने-उत्तम दिन तथा शुभ मुहूर्त की-आदि में सुखपूर्वक सुन्दर कान्ति के धारक, तेजस्वी, शुभलक्षणमण्डित शरीर के धारक, सुभग तथा मनोहर रूप से राजित उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न किया। यह पुत्र वास्तव में पुण्यशाली था। अतः उसकी नाल गाढ़ने के लिये जब पृथ्वी खोदी गयी, तब धन से भरी हुई बड़ी भारी कढ़ाही निकली तथा इसी तरह जब उसके मज्जन के लिये भी खोदा गया, तब भी पृथ्वी के भीतर से धन का भरा हुआ दूसरा भाजन निकला।

धनपाल इस आश्चर्य को देखकर उसी समय राजा के पास दौड़ा गया और कहने लगा—विभो! मुझे उत्तम पुत्र की प्राप्ति हुई है और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है। धनपाल के वचन सुनकर महाराज अवनिपाल बोले—श्रेष्ठिन्! जिस पुत्र के पुण्य से वह धन निकला है, उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसी के धन की अभिलाषा नहीं है। महाराज की इस प्रकार निस्पृहता से धनपाल को बहुत सन्तोष हुआ। पश्चात् वहाँ से गृह

पर आकर निकट के जिनालय में महाविभूतिपूर्वक समस्त कल्याण कर्म की कारणभूत, विघ्नों के नाश करनेवाली जिन भगवान की महापूजा की। नाना प्रकार दानादि से अपने कुटुम्बीजनों को तथा याचक लोगों को सन्तोषित किये और बन्धुओं के साथ-साथ गीत, नृत्य, वादित्र, ध्वजा, तोरणमाला प्रमृति महोत्सवपूर्वक पुत्र के उत्पन्न होने का उत्सव किया ॥51-60॥ और फिर दसवें दिन बहुत धन खर्च कर सर्व जिन चैत्यालयों में जिनेन्द्र की पूजन की तथा बन्धु लोगों को और याचक लोगों को उनकी इच्छानुसार सन्तोषित किये।

बन्धु लोगों ने विचारा कि—अहो! इसी कुलदीपक उत्तम पुत्र के उत्पन्न होने का ही तो यह फल है जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुए हैं। इसी विचार से उन्होंने पुत्र का भी शुभ नाम धन्यकुमार ही रख दिया। पश्चात-सुन्दर स्वरूपशाली, लोगों के लोचनों का प्रेम भाजन तथा अपने योग्य अलंकारों से अलंकृत धन्यकुमार भी माता-पितादि बन्धुओं को दुग्धपानादि सुमधुर मधुर चेष्टाओं से आनन्द देने लगा तथा बुद्धि, शरीर, सौन्दर्यतादि से दिनों दिन कुमुदबान्धव के समान बढ़ने लगा। और धीरे-धीरे मुग्धावस्था को उल्लंघकर कुमार अवस्था में आया और मनोहर गुणों के द्वारा देवकुमार के समान बढ़ने लगा।

उस समय धनपाल ने—देव, शास्त्र और साधुओं की भक्तिपूर्वक परिचर्या कर विद्या, कला, विज्ञान, प्रभृति गुणों की समुपलब्धि के लिये धन्यकुमार को उपाध्याय के पास महोत्सवपूर्वक पढ़ाने को बैठाया। बुद्धिमान धन्यकुमार भी थोड़े ही समय में उत्तम बुद्धिरूप नौका के द्वारा शास्त्र-नीरधि के पार हो गया।

पश्चात् धीरे-धीरे युवावस्था में—अनेक शास्त्रों का अनुभवी ज्ञान तथा कला कौशल का जाननेवाला, विचारशील, उत्तम गुणों का आश्रय, बुद्धिमान, सुयश से सारे वसुन्धरा वलय में प्रसिद्ध शुभ लक्षणादि से शोभित, सुन्दर शरीर का धारक, रूप-लावण्य भूषण-वसन और पुष्पमालादि से विराजित होकर ऐसा शोभने लगा, जैसा कामदेव श्री के द्वारा शोभता है।

धन्यकुमार इस अवस्था में भी प्रमादी न होकर निरन्तर धर्म सम्पादन के लिये प्रचुर धन लगाकर देव-गुरु-सिद्धांत की परिचर्या किया करता था और शुभभावों से अपनी इच्छानुसार दीन अनाथ लोगों के लिये दयाबुद्धि से दानादि दिया करता था। इसी तरह सम्पदा के उपभोगपूर्वक कुमार अवस्था के योग्य सुखजनक भोगों का अनुभव करते-करते बहुत दिन बीत गये।

निरन्तर इसी प्रकार लक्ष्मी के व्यय करने की उसकी उदारता को उसके भाई लोग सहन नहीं कर सके। सो किसी दिन उन दुर्बुद्धियों ने अपनी माता से कहा—देखो! हम सब तो धन कमावैं और उसका खानेवाला यह केवल धन्यकुमार, जो कभी कुछ व्यापार नहीं करता है!

प्रभावती ने—पुत्रों की रामकहानी अपने स्वामी से कह सुनाई और साथ में कहा कि—देखो! धन्यकुमार अब सब तरह सौभाग्य-सम्पन्न हो गया है, उसे आप व्यापार में क्यों नहीं लगाते? व्यापार के न करने ही से बड़े भाई उससे द्वेष करते रहते हैं।

अपनी कांता के वचनानुसार धनपाल भी शुभ मुहूर्त में सुपुत्र धन्यकुमार को किसी तरह बाजार में ले गया और उसे सौ दीनारे देकर बोला—प्यारे! यह द्रव्य लेओ और इसके द्वारा यदि कोई

किसी वस्तु को बेचने के लिये लावे तो तुम उसे खरीद लेना तथा उससे भी किसी और वस्तु को अच्छी देखकर खरीदना। सो इसी तरह जब तक भोजन का समय न आ जावे, तब तक व्यापार करते रहना, फिर अन्त में जो वस्तु खरीदी हो, उसे नौकर के हाथ से उठवाकर भोजन करने के लिये घर पर आ जाना।

इस प्रकार समझाकर धनपाल तो घर चला गया और सरल हृदय तथा सौन्दर्यशाली धन्यकुमार नौकर के साथ वहीं पर ठहरा। इतने में कोई पुरुष लकड़ी की भरी हुई एक उत्तम गाड़ी बेचने के लिये वहीं पर लाया। धन्यकुमार ने-पिता के दिये हुए धन को देकर उससे वह गाड़ी खरीद ली। और फिर गाड़ी के द्वारा अपनी इच्छानुसार एक मैंढा मोल ले लिया। मैंढ़े को भी किसी दूसरे को देकर उससे चार खाट के पाये खरीद लिये। पश्चात् अपने घर पर आ गया। उस समय धन्यकुमार की माता बहुत आनन्दित हुई और कहने लगी कि—अहो! आज पहले ही दिन मेरा पुत्र व्यापार करके आया है; इसलिए उत्सव करना चाहिए!

उधर वे आठ पुत्र देखकर कहने लगे कि—देखो! यह कितने आश्चर्य की बात है जो आज ही तो पिताजी ने व्यापार करने के लिये सौ दीनारें दी थीं और पहले ही दिन उन्हें खोकर चला आया तो भी हमारी माता उत्सव कर रही है और हम लोग बहुत भी धन कमाकर लाते हैं, फिर भी हमारे सामने तक न देखकर उल्टी उदासीन रहती है। अस्तु! इसमें इसका क्या दोष? किन्तु दोष है हमारे पूर्वोपार्जित कर्मों का।

पुत्रों के वचनों को सुनकर प्रभावती ने उन्हें हृदय में रख लिये और फिर सब पुत्रों के पहले ही धन्यकुमार को भोजन कराकर

स्वयं भी भोजन कर लिया। पश्चात् एक बड़े भारी काष्ठ के भाजन में जल भरकर प्रीतिपूर्वक अपने ही हाथ से खाट के पायों को धोने लगी। धोने के साथ ही पायों का कुछ भाग दूर जा गिरा और शेष भाग से कुमार के प्रचुर पुण्योदय से देदीप्यमान अनेक रत्न गिरने लगे और उसी में से एक व्यवस्थापत्र भी निकला। तो कदाचित् कोई कहे कि—ये खाट के पाये किसके हैं? यह पत्र किसने लिखा? तथा इसमें पत्र कैसे आया? इन सब प्रश्नों का उत्तर नीचे लिखा जाता है—

पहले इसी नगरी में पुण्यशाली तथा महाधनी वसुमित्र नामक राजश्रेष्ठी हो गया है। सो प्रचुर शुभोदय से उसके यहाँ समस्त भोगोपभोग सम्पदा की देनेवाली नवनिधियाँ पैदा हुई थीं। एक दिन वसुमित्र ने उपवन में आये हुए अवधिज्ञानी मुनि से जाकर पूछा—विभो! आगे ऐसा कौन पुण्यात्मा नररत्न उत्पन्न होनेवाला है जो इन नवनिधियों का स्वामी होगा? मुनिराज ने अवधिज्ञान के बल से कहा—

'महाराज! अवनिपाल की उत्तम राजधानी में धनपाल वैश्य का धन्यकुमार नाम पुत्र उत्पन्न होनेवाला है, सो वही पूर्वोपार्जित पुण्योदय से इन निधियों का भी स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगों को बहुत सुख सम्पत्ति प्राप्त होंगी।'

मुनिराज के वचनों को सुनकर वसुमित्र अपने घर गया और फिर मुनिराज के कथनानुसार यों व्यवस्था पत्र लिखा—

'श्रीमान् महामण्डलेश्वर महाराज अवनिपाल के सुराज्य में वैश्यकुल का उत्तम भूषण, धनी-भोगी तथा पुण्यशाली जो धन्यकुमार होनेवाला है, वही धन्यात्मा मेरे गृह में इस स्थान से

नवनिधियाँ स्वीकार कर सुखपूर्वक यहीं पर रहे।'

इस प्रकार पत्र लिखकर पत्र को उत्तम-उत्तम रत्नों के साथ-साथ खाट के पायों में बन्द कर सुखपूर्वक रहने लगा। पश्चात् सेठ तो आयु के अवसान समय में सल्लेखनापूर्वक प्राणों को छोड़कर शुभोदय से सुख-निकेतन स्वर्ग में गया। सेठजी का स्वर्गवास हो जाने के बाद बेचारे शेष घर के लोग भी अशुभ कर्मोदय से मरकर कितने नरक में, कितने अपने-अपने कर्मों के अनुसार गतियों में गये। इनमें जो सबके पीछे मरा था, उसे जलाने के लिये खाट सहित स्मशानभूमि में लिवा ले गये। उन्हीं खाट के पायों को शुभोदय से धन्यकुमार ने चाण्डाल के हाथ से खरीदे।

ग्रन्थकार कहते हैं कि—अहो! शुभ कर्म ही एक ऐसी वस्तु है, जो नहीं प्राप्त होनेवाली, अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूर की तथा बहुत धन के द्वारा मिलनेवाली वस्तु को भी स्वयं मिला देता है।

धन्यकुमार को पत्र के वांचने से बहुत प्रसन्नता हुई। वह उसमें जैसा लिखा था, उसी अनुसार निधियों के स्थानादि को ठीक-ठीक समझकर राजा के पास गया और उनसे युक्तिपूर्वक गृह के लिये अभ्यर्थना की। तथा अपने शुभोदय से आज्ञा मिल जाने पर घर के भीतर गया और वहाँ निधियों को देखकर आनन्दित हुआ।

तत्पश्चात् वह उत्कृष्ट निधियों को अपने अधिकार में करके उनके द्वारा होनेवाले अपरिमित धन का व्यवहार मनोभिलषित फल के देनेवाली देव, गुरु तथा शास्त्र की महापूजा में, सत्पात्रों के लिये पुण्य सम्पादन के कारण दान के देने में, दीन तथा अनाथों के लिये उनकी इच्छा के अनुसार दया, दान करने में तथा प्रचुर विभूति से जिनधर्मियों का उपकार करने लगा।

इसी तरह धन्यकुमार थोड़े दिनों में राज्यमान्य होकर त्रिभुवन विस्तृत सुयश के द्वारा उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार भोगों को भोगने लगा। धन्यकुमार अपने कुटुम्बी तथा अन्यान्य लोगों को भी बहुत प्रिय था। वह अपने शुभाचरण से धर्म सेवन करता हुआ सुखरूप पीयूष-समुद्र में निमग्न होकर कौतुक से बीते हुये समय को न जानकर सुखपूर्वक रहने लगा।

अहो! धन्यकुमार अपने पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म के उदय से सर्वत्र आश्चर्यजनक भोग तथा सुख की सम्पादन करनेवाली उत्तम सम्पत्ति-नव निधियों को प्राप्त होकर मनुष्य तथा राजादि से मान्य सुख का सदैव उपभोग करता है, ऐसा समझकर जो पुरुष सुख के अभिलाषी हैं, उन्हें चाहिए कि वे सदैव अपने पवित्र आचरणों से केवल एक पुण्य का उपार्जन करें।

क्योंकि यही पुण्य, पुण्य तथा गुणों का आलय है, पाप का नाश करनेवाला है, पुण्य का बुद्धिमान लोग आश्रय करते हैं, पुण्य से समस्त सुख प्राप्त होते हैं, पुण्य की प्राप्ति के लिये ही पुण्य क्रियायें की जाती हैं, पुण्य से त्रिभुवन में होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्य के सम्पादन करने का बीज व्रत का धारण करना है, इसलिए बुद्धिमानों! सुख की समुपलब्धि के लिये निरन्तर पुण्य के उपार्जन करने में चित्त लगाओ।*

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार का जन्म तथा उपनिधियों के लाभ का वर्णन नाम पहिला अधिकार समाप्त हुआ॥ 1॥

---

* प्रथमानुयोग की कथन पद्धति में जीवों को संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति बतलाकर धर्ममार्ग में लगाने का प्रयोजन हैं। पुण्य संचय का उपदेश पुण्य की उपादेयतापूर्वक नहीं, अपितु पापाचरण की निवृत्ति हेतु दिया गया है।

द्वितीय अधिकार

जो धर्म के आदि प्रवर्तक हैं, जिन्हें त्रिभुवनवर्ती समस्त लोग नमस्कार करते हैं, सारे वसुन्धरा मंडल में जो उत्तम गिने जाते हैं, सज्जन पुरुषों के आश्रयाधार तथा अखिल संसार के जीवों का कल्याण करनेवाले हैं, उन श्री जिनेन्द्र का मैं स्तवन करता हूँ।

एक दिन उज्जयिनी का ही रहनेवाला कोई बुद्धिमान धन्यकुमार का कान्तिशाली सुन्दर रूप देखकर उसके पिता से बोला— धनपाल! रति के समान सुन्दर एक बाला है, मेरी इच्छा है कि मैं उसे धन्यकुमार के लिये विवाह दूँ, जिससे वह अपनी इच्छानुसार सुखोपभोग कर सके। उसके उत्तर में धनपाल ने कहा—मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। आपको चाहिए कि हमसे भी जो ऐश्वर्यादि में बड़े हैं, उनके लिये अपनी कन्या का संकल्प करें। उसने कहा—आपने कहा सो ठीक है, परन्तु मेरी यह इच्छा नहीं जो मैं उसे दूसरे के लिये देऊँ। इसलिए मैंने तो अपने हृदय में निश्चय कर लिया है कि जिस किसी समय देऊँगा तो धन्यकुमार ही के लिये देऊँगा।

इस तरह और भी कितने बड़े-बड़े धनिक लोग कहने लगे कि हम भी अपनी कन्या का परिणय संस्कार धन्यकुमार के साथ ही करेंगे, औरों के साथ नहीं। इस प्रकार दिनों दिन बढ़ते हुए पुण्यशाली धन्यकुमार का अभ्युदय उसके बड़े भाईयों को सहन नहीं हुआ, इसलिए वे उसके साथ ईर्ष्या करने लगे और साथ ही उसकी जीवनयात्रा का नाम शेष करने के लिये संकल्प किया।

उधर बेचारे धन्यकुमार को शुभ कामों की ओर से बिल्कुल अवकाश नहीं मिलता था, इसलिए उसे यह कैसे मालूम हो सकता

था कि मेरे प्रति भाईयों द्वारा क्या-क्या षड़यन्त्र रचे जा रहे हैं? भाईयों के दुष्ट अभिप्रायों को वह न जान सका। किसी दिन वे पापी लोग कुछ विचारकर उपवन की वापिकाओं में जलक्रीड़ा के लिये धन्यकुमार को लिवा ले गये। बेचारा सरल हृदय धन्यकुमार वापिका के किनारे पर बैठकर प्रीतिपूर्वक उन लोगों की जल लीला देखने लगा। इतने में उसके भाईयों में से एक कुटिल परिणामी पापी ने पीछे से आकर और गला दबाकर उस विशुद्धिबुद्धि को वापिका में उलट दिया। धन्यकुमार पाप के उदय से वापिका के गहरे जल में गिरा तो परन्तु गिरते-गिरते भी उसे महामन्त्र का स्मरण हो आया। उन पापात्मा को इतने पर भी जब सन्तोष न हुआ, तब ऊपर से और भी निर्दयतापूर्वक उसके किसी प्रकार न जीने की इच्छा से पत्थर फेंकने लगे। पश्चात् यह समझकर कि अब वह नियम से अपने जीवन का भाग पूरा कर चुका होगा, सो इसी विश्वास से किसी प्रकार सन्तोष मानकर घर की ओर लौट गये।

ग्रन्थकार कहते हैं कि—'संसार में ऐसा कौन बुरा काम है, जिसे पापी लोग न करते हों किन्तु नियम से करते हैं।'

उधर धन्यकुमार के बड़े भारी पुण्योदय से अथवा यों कहो कि महामन्त्र की शक्ति से उसी समय जलदेवता ने आकर धर्मात्मा कुमार को जल निकलने के द्वार से धीरे-धीरे बाहर निकाल दिया। यह बात ठीक है कि जिन लोगों ने पहले पुण्य संचय कर रखा है, उनके आधीन देवता स्वयं हो जाते हैं और आये हुए उपद्रवों का नाश कर उपकार करते हैं।

इसी महामन्त्र का ध्यान करने से जो शुभकर्म का बन्ध होता है, उससे दुष्टों के द्वारा किये हुए घोर उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार केसरी के द्वारा बेचारे बड़े-बड़े गजराज क्षणभर में नामशेष हो जाते हैं। देखो! यह पुण्य ही का माहात्म्य है जो जलीय उपद्रव, स्थलीय उपद्रव, अकाल मृत्यु, चोर विभीषिका, राज विभीषिका आदि विघ्नजाल बहुत जल्दी ही शान्त हो जाते हैं। इसी कारण से तो कहते हैं कि जल, स्थल, दुर्ग, अटवी आदि जनित भयावस्था में तथा मृत्युकाल में भी केवल एक धर्म ही सहाई होता है।

इसीलिए बुद्धिमानों को चाहिए कि आपत्ति के समय में वास्तविक बन्धु की तरह हित करनेवाले तथा मरण प्रभृति अपाय के कारणों से रक्षा करनेवाले धर्म का निरन्तर सम्पादन करें।

इसके बाद पुण्यात्मा धन्यकुमार निर्विघ्न बिना परिश्रम जल बाहर निकलकर अपने नगर की ओर चला और शहर के बाहर पहुँचकर विचारने लगा—देखो! इस समय तो शुभोदय से मरते-मरते मैं किसी तरह बचा हूँ, यदि फिर भी उन लोगों का संग रहेगा तो नहीं मालूम क्या होगा? इसीलिए मुझे घर पर जाना योग्य नहीं है क्योंकि बाह्य शत्रुओं का भय बना रहता है, वे छोड़े जा सकते हैं, परन्तु घर का पुरुष यदि शत्रु हो जाए तो बहुत बुरा होता है। (फिर उसमें बन्धुता का भाव नहीं रहता और फिर उसका परिणाम भी यही होता है कि) जिस प्रकार कषायादि अभ्यंतर शत्रु सहसा नहीं छोड़े जा सकते उसी तरह उन लोगों का सम्बन्ध छूटना मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार अपने हृदय में विचारकर धन्यकुमार वहाँ से दूसरे देश की ओर चल दिया। चलते-चलते उसने किसी खेत में एक किसान को हल हाँकते हुए देखा और विचारा कि देखो! मैंने

अपनी लीला से कितनी कौशल विद्यायें सीखी हैं, परन्तु यह तो कोई अपूर्व ही विद्या मालूम पड़ती है। इतना विचार कर किसान के पास गया और आश्चर्य से उसकी ओर अवलोकन करता हुआ वहीं पर बैठ गया।

कृषक नाना प्रकार के अलंकारों से भूषित इसका रूपातिशय देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और धन्यकुमार से बोला।

हे स्वामी! मैं कुटुम्बी हूँ, कुछ शुद्ध दही और भात लाया हूँ, मुझ पर अनुग्रहपूर्वक आप भोजन करें।

हे चतुर! भोजन करके मुझे और मेरी प्रार्थना को सफल करो। कृषक की प्रार्थना सुनकर धन्यकुमार ने उससे कहा – यह बात मुझे स्वीकार है।

धन्यकुमार की स्वीकारता से सन्तोषित होकर कृषक उसे हल के पास बैठाकर आप पत्तों का पात्र बनाने के लिये पत्र लेने गया।

कृषक के चले जाने पर धन्यकुमार मुट्ठी से हल पकड़कर अपनी इच्छानुसार सहर्ष कौतुक से बैलों को चलाने लगा।

उस समय हल के अग्रभाग से पृथ्वी का विदारण होते ही उसे सुवर्ण से भरा हुआ ताँबे का बड़ा भारी एक कलश दिख पड़ा। उसे देखकर धन्यकुमार हा! मेरे इस अपूर्व विज्ञानाभ्यास से पूरा पड़े। यदि कुटुम्बी यह प्रचुर धन देखेगा तो प्रगटपने वह भी भाईयों के समान मेरे साथ बर्ताव करेगा।

इस प्रकार विचार करके द्रव्य के भय से डरकर धन्यकुमार कलश को उसी तरह रखकर और मिट्टी से उसे ढँककर बैठ गया।

इतने में कृषक भी पत्ते लाया और खड्डे में रखे हुए निर्मल जल का भरा हुआ कलश तथा दही–भात निकालकर जल से

धन्यकुमार के चरण-कमल तथा पत्ते धोकर पत्तों के भाजन में भोजन करने के लिये उसे बैठाया।

धन्यकुमार ने कृषक की प्रार्थना के अनुसार भोजन किया और पश्चात् उसने राजगृह जाने का सुगम मार्ग पूछकर उसी रास्ते से अपनी इच्छा के अनुसार चला गया।

धन्यकुमार के जाने के बाद जब कृषक फिर हल चलाने लगा, तब उसे वही धन दिख पड़ा। द्रव्य देखकर वह आश्चर्य के साथ विचारने लगा कि अहो! उस पुण्यशाली के शुभोदय से यह द्रव्य निकला है, इसलिए मेरे स्वीकार करनेयोग्य नहीं है। क्योंकि जो मूर्ख लोग लोभ से दूसरों का धन ले लेते हैं, वे पाप के उदय से अपनी लक्ष्मी का भी साथ में नाश कर जन्म-जन्म में दरिद्री होते हैं।

इस प्रकार विचारकर दूसरों के धन में निस्पृह कृषक वह धन धन्यकुमार को देने के लिये उसके पीछे-पीछे शीघ्रता से जाने लगा। धन्यकुमार दूर से बुलानेवाले कृषक को आता हुआ देखकर एक वृक्ष के नीचे सुखपूर्वक बैठ गया।

इतने में वह किसान धन्यकुमार के पास आकर तथा उसे नमस्कार करके बोला—हे नाथ! अपना धन छोड़कर इस तरह इच्छा रहित क्यों चले आये? कृषक के वचन सुनकर धन्यकुमार बोला—भाई! मैं क्या द्रव्य साथ में लेकर यहाँ आया था? नहीं! किन्तु उल्टा तुम्हीं ने तो मुझे दही तथा भात का भोजन कराया है, फिर यह धन मेरा कहाँ से आया?

इसके उत्तर में अत्यन्त निर्लोभी और चतुर किसान कहने लगा—कुमार! मेरे वचन सुनिये—पहले हमारे पितामह तथा पिता

यह खेत अपने पुत्रों के साथ-साथ जोता करते थे तथा मैं भी हल चलाता था, परन्तु कभी धन नहीं निकला और आपके आने पर आज शुभोदय से यह धन निकला है, इसलिए निश्चय से यह धन आपका है क्योंकि हम सरीखे मन्द भाग्यों के लिये ऐसी सम्पत्ति कहाँ?

किसान के इस प्रकार वचन सुनकर धन्यकुमार बोला— अस्तु, यह मेरा ही धन रहे! किन्तु अब मैंने तुम्हारे लिये दिया, तुम प्रयत्नपूर्वक पुण्योपार्जन तथा सुख के लिये इसका उपभोग करो। विभो! आपका मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह है। इस प्रकार धन्यकुमार से कहकर कुटुम्बी फिर उसे मस्तक नवाकर प्रणाम कर यों कहने लगा—

हे नाथ! मैं कुटुम्बी ग्राम में रहता हूँ और मेरा नाम भी कुटुम्बी है। यदि किसी समय मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप शीघ्र ही मुझे सूचना करना। इस प्रकार प्रार्थना पुरस्सर पुनः नमस्कार कर वह चला गया।

उधर धन्यकुमार भी रवाना हुआ, सो उसे रास्ते में जाते समय पूर्वोपार्जित शुभोदय से मनोहर तथा निर्जन्तु किसी शुद्ध स्थान में बैठे हुए अवधिज्ञान से युक्त, निरन्तर धर्मोपदेश देनेवाले, तीन जगत के जीवों का हित करनेवाले और गुणों के समुद्र मुनिराज दिखायी दिये।

धन्यकुमार उनके दर्शन से हृदय में बहुत आनन्दित होकर उनके समीप गया। मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी और हाथ जोड़कर देवतार्च्य उनके चरणों की अभिवन्दना की तथा धर्म प्राप्ति के लिये उनके पास हर्षपूर्वक बैठ गया।

मुनिराज ने भी उसे धर्मवृद्धि देकर उसकी शुभाशीर्वाद से प्रशंसा की और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे—कुमार! जिस धर्म के प्रभाव से पद-पद में तुम्हें खजाना मिलता है, बड़ा भारी लाभ होता है, सर्व जगह मान्यता होती है, जो इस लोक तथा परलोक में हित करनेवाला है, स्वर्गसुख तथा शिवसुख का आहार है और जिनेश्वर, चक्रवर्ती तथा इन्द्रपद की सम्पत्ति का देनेवाला है, उसी धर्म का तुम्हें सेवन करना चाहिए क्योंकि धर्म के फल से धर्मात्माओं को तीन जगत का लक्ष्मीजन्य सुख, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ और उत्तम-उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस धर्म को जिन भगवान ने मुनिधर्म तथा गृहस्थधर्म, इस प्रकार दो भेदरूप कहा है। उसमें मुनिधर्म सम्पूर्णता से होता है और गृहस्थधर्म एकदेशरूप दयामय है। धीर मुनिराज मुनिधर्म के द्वारा उसी पर्याय से अनन्त सुखशाली मोक्ष को प्राप्त होते हैं। अथवा सर्वार्थसिद्धि के सुख का उपभोग कर सर्वज्ञ-अवस्था को प्राप्त होते हैं। वे चक्रवर्ती पद पाते हैं अथवा चरमशरीरी होकर उत्तम-उत्तम तपश्चरण के द्वारा क्रम से मोक्ष चले जाते हैं। और गृहस्थधर्म के द्वारा बुद्धिमान पुरुष सर्व ऋद्धियों के समूह का आधारभूत अच्युत स्वर्ग पर्यन्त स्वर्ग में व सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय तथा सम्पत्ति के आकर अर्चनीय उत्तम कुल में अवतार लेते हैं और वहाँ सुख भोगकर अनुक्रम से तपश्चरण द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष चले जाते हैं।

हे चतुर! इन दोनों धर्मों का मूलकारण, चन्द्रमा की तरह निर्मल, नि:शंकादि आठ गुणों से युक्त, शंकादि पच्चीस मलरहित, जिन भगवान तथा इन्द्रादि की सम्पत्ति का कारण, उत्तम-उत्तम सुख का आकर, सम्यग्दृष्टि पुरुषों के साथ जानेवाले शुद्ध सम्यक्त्व को समझो। वीतराग भगवान को छोड़कर सुखोपभोग तथा मोक्ष के

कारण त्रिभुवन अर्चनीय और कोई देव नहीं है, न हुए तथा न होंगे। जिन भगवान के कहे अहिंसा धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म सब ऋद्धि तथा सुख के कारण और सत्य नहीं हैं।

समस्त परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ गुरु से बड़े सत्पुरुषों के सत्कार करने योग्य तथा स्वर्ग-मोक्ष के मार्ग का उपदेश करनेवाले अन्य गुरु नहीं हैं। सर्वज्ञ भगवान के कहे हुए सात तत्त्वों से बढ़कर सत्य तथा सम्यग्ज्ञान के कारण दूसरे तत्त्व इस संसार में नहीं हैं।

उत्तम पात्रदान छोड़कर भोग तथा सुख का देनेवाला अन्य दान नहीं है तथा बारह प्रकार तप छोड़कर कर्मों को नाश करनेवाला दूसरा कोई तप नहीं है।

इस प्रकार जिन भगवान के कथन में जो बुद्धिमान पुरुषों का निश्चय करना है तथा श्रद्धा और रुचि का रखना है, वह सब दर्शनरूप कल्पवृक्ष के बीज हैं। क्योंकि संसार में मनोभिलाषित सुख का देनेवाला, तीन जगत के स्वामियों की तथा जिन भगवान की सम्पत्ति का कारण यही सम्यक्त्व है। ऐसा समझकर आठ गुण युक्त,चन्द्र की कान्ति समान शुद्ध तथा पच्चीस दोषरहित सम्यग्दर्शनरूप शुद्धि तुम धारण करो।

यहाँ कहे हुए देव-पूजनादि छह कर्म धर्म की सम्प्राप्ति लिये सदैव आचरण करो। जिन पूजन, गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान, ये गृहस्थों के नित्य करने योग्य छह कर्म पुण्य के कारण हैं।

भक्तिपूर्वक जिनमन्दिर तथा जिनप्रतिमा निर्माण कराकर अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम-उत्तम तथा मनोहर आठ प्रकार पूजन द्रव्य से प्रतिदिन जो जिनप्रतिमाओं की पूजा की जाती है, उसे बुद्धिमान पुरुष सम्पूर्ण अभ्युदय की देनेवाली कहते हैं।

यही कारण है कि जिन भगवान की पूजन से सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त होती है, विघ्न समूह तथा गृहारम्भ में होनेवाले पाप का नाश होता है।

जो गृहस्थ उत्तम पात्र सद्गुरुओं की प्रतिदिन अज्ञान तथा मोह के नाश करनेवाली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र देनेवाली सेवा, भक्ति, सुश्रुषा तथा सदा आज्ञा का पालन अपने धर्म-लाभ के लिये किया करते हैं, उसे गुरुपास्ति (गुरु सेवा) कहते हैं।

जो बुद्धिमान पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के लिये सिद्धांत का अभ्यास करते हैं, वह तथा सामायिक नमस्कार और ज्ञानाभ्यास आदि जितने पावन कर्म हैं, ये सब स्वाध्याय कहे जाते हैं। महर्षि लोग स्वाध्याय को त्रिभुवनवर्ति पदार्थों के देखने के लिये प्रदीप कहते हैं क्योंकि इसके द्वारा प्रचुर अज्ञानान्धकार का नाश होता है तथा यह पंचेन्द्रियरूप शत्रुओं का घातक है।

यही कारण है कि इसी ज्ञान से सत्पुरुष हेयोपादेय का, भले-बुरे का, देव, शास्त्र और गुरु की परीक्षा का, धर्म के स्वरूप का, मोक्षमार्ग का, खोटे मार्ग का तथा झूठे-सच्चे धर्म का स्वरूप जानने लगते हैं और जो अज्ञानी होते हैं, वे जैसे जन्मान्ध पुरुष हाथी का ठीक-ठीक स्वरूप नहीं जान सकते, वैसे ही कभी कुछ भी नहीं जान पाते हैं।

इस प्रकार स्वाध्याय का फल समझकर बुद्धिमान पुरुषों को सिद्धान्त शास्त्र में प्रवेश के प्रतिबन्धक अज्ञान का नाश करने के लिये और ज्ञान की सम्प्राप्ति के लिये शिवसुख साधक स्वाध्याय करना चाहिए।

बारह प्रकार उत्तम व्रतों के पालन करने को, पंचेन्द्रियरूप शत्रुओं के वश करने को, तथा हृदय से प्राणियों की दया करने को गणधर भगवान संयम कहते हैं। यह संयम निरन्तर पुण्य की सम्प्राप्ति करनेवाला है और पापास्त्रव का निरोधक है। अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन अथवा और व्रतादि में नियमपूर्वक उपवास करने को दूसरा कायक्लेश तप कहते हैं।

बुद्धिमान पुरुष बारह प्रकार व्रतों के द्वारा जो तप आचरण करते हैं, वह सम्पूर्ण तप कर्म के भस्म करने के लिये अग्नि के समान है। इसके द्वारा गृहस्थों से गृह सम्बन्धी आरम्भ से होनेवाला पाप नाश होता है तथा गुणों के साथ ही साथ धर्मरूप कल्पवृक्ष वृद्धिगत होता है।

इस प्रकार समझकर पर्व तिथि में बुद्धिमानों को उपवासादि पूर्वक निर्मल तप आचरण करना चाहिए और फिर उसे प्राणों के नाश होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए। प्रतिदिन दान देने के लिये अपने गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और उत्तम पात्र मिलने पर उन्हें दान देना चाहिए। क्योंकि दान सुख का आकर है, अपना तथा दूसरे का हित करनेवाला है, धर्म तथा सुख का देनेवाला है, गृहारम्भ से होनेवाले पाप का नाश करनेवाला है और भोगभूमि की विभूति का प्राप्त करानेवाला है।

इन छह कर्मों के द्वारा गृहस्थों को निरन्तर उत्तम धर्म की प्राप्ति होती रहती है तथा गृहारम्भ से होनेवाले पाप कर्म का नाश होता है।

हे कुमार! इस प्रकार समझकर तुम्हें स्वर्ग-सुख के देनेवाले पावन, गृहस्थों के छह कर्म नित्य करने चाहिए। क्योंकि इन्हीं के द्वारा परम्परा मोक्ष-सुख भी मिल सकेगा। और देखो! पाँच अणुव्रत,

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, ये बारह व्रत भी गृहस्थ धर्म में पाले जाते हैं। गृहस्थ धर्म भी पाप का नाश करनेवाला और स्वर्ग सुख का प्रधान कारण है, इसलिए कुमार! धर्म की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रावकों के उत्तम व्रत धारण करने चाहिए। तुम इनके द्वारा उत्तम सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त कर सकोगे। सदैव सद्धर्म का सम्पादन करो, धर्म ही का आश्रय लेओ क्योंकि धर्म गुणों का खजाना है। धर्म के अनुसार उत्तम मार्ग पर चलो, उसकी प्रतिदिन अभिवन्दना करो, धर्म से तुम्हें सब वस्तुओं की अवश्य सिद्धि होगी। देखो, धर्म का मूल दया है, उसे कभी मत भूलो। धर्म में सदा निश्चल चित्त रहो। यही उत्तम धर्म तुम्हारी सदा रक्षा करेगा।

तुम जानते हो कि धर्म अनंत सुख का समुद्र है और दुःख का नाश करनेवाला है, बुद्धिमान लोग सदा धर्म का उपार्जन करते हैं। धर्म के द्वारा शीघ्र ही सब गुण प्राप्त हो जाते हैं, धर्म को मैं भी नमस्कार करता हूँ। धर्म को छोड़कर और कोई शिव-सुख का देनेवाला नहीं कहा जा सकता। धर्म का मूल क्षमा है, धर्म में अपने चित्त को एकाग्र करता हूँ, हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के विघ्नों में शान्ति तथा धर्म-श्रवण नाम द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ॥2॥

तृतीय अधिकार

विश्वविघ्नहरान्वन्वे पञ्च, सत्परमेष्ठिनः।
विश्वश्रीधर्मकतृंश्च, विश्वबन्धुन्गुणार्णवान्॥

धन्यकुमार, मुनिराज के द्वारा धर्मोपदेश सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने योग्य व्रत, नियमादि श्रद्धापूर्वक ग्रहण किये। तत्पश्चात् मुनिराज को सभक्ति अभिवंदना कर हाथ जोड़कर पूछा—

नाथ! आप तीन जगत के जीवों का हित करनेवाले हैं। आपसे मुझे कुछ पूछना है। वह यह कि क्या कारण है जिससे मेरे भाई लोग तो मुझसे द्वेष करते हैं और किस पुण्य से माता प्रेम करती है? तथा पद-पद पर मुझे बहुत सम्पत्ति मिलती है। क्या आप कृपा कर ये सब बातें मुझे कहेंगे?

मुनिराज, धन्यकुमार पर अनुग्रह कर उसके पूर्वजन्म की जीवनी सुनाने लगे—कुमार! जरा अपने चित्त को कहीं जाने न देना, मैं तुम्हें पूर्वजन्म की कथा कहता हूँ। क्योंकि उससे तुम्हारे हृदय में संसार से भय उत्पन्न होगा, धर्म में अभिरुचि होगी, पाप से डरोगे और दान, व्रत, नियमादि में उत्तम विचार होंगे। तुम्हारी कथा से सर्व साधारण का भी उपकार हो सकेगा।

❁ ❁ ❁

भारतवर्ष—मगधदेश, उसके अन्तर्गत भोगावती नाम नगरी थी। उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था। उसकी भार्या मृष्टदाना थी। उनके घर में सुकृतपुण्य नाम का एक नौकर था। जब मृष्टदाना गर्भवती हुई, तब ही उसके पापोदय से कामवृष्टि मर गया। पश्चात् वह गर्भ जैसे-जैसे बढ़ने लगा, तैसे-तैसे सब लोग गर्भ के प्रचण्ड पाप से धराशायी हुए।

पुत्र का जन्म होते ही मृष्टदाना की माता ने भी परलोक यात्रा की। धन धान्यादि सब वस्तुएँ नष्ट हो गयीं। साथ ही साथ पुण्य कर्म भी नष्ट हुआ।

सच कहा है—जब अभागा कुपुत्र गर्भ में आता है, तब कुटुम्ब, धन, सुख और पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं और घर में दरिद्रता का वास हो जाता है। पापी पुत्र का पैदा होना सर्वथा बुरा है। समझो! पुत्र, कलत्र आदि जितनी वस्तुएँ जो दुःख की कारण होती हैं, वह सब पाप का फल है। इसलिये जो बुद्धिमान हैं, उन्हें अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण पाप प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिए। प्रत्युत सदा धर्म का उपार्जन करना उचित है।

देखो! इस बालक ने पाप कर्म के सिवाय कभी पुण्य कर्म नहीं किया, यही कारण है जो आज इसकी यह दारुण दशा हुई। यही समझ मृष्टदाना ने भी अपने अभागे पुत्र का नाम अकृत्य-पुण्य रखा। सब धन तो पहले ही नष्ट हो चुका था। जब बेचारी मृष्टदाना को पेट भरना तक मुश्किल हो गया, तब वह कुछ उपाय न देख लाचार होकर दूसरे के घर का पीसना पीसकर बहुत दुःख के साथ अभागे पुत्र का पालन पोषण करने लगी।

उधर कामवृष्टि के मर जाने के बाद पुण्योदय से उसका नौकर वही सुकृतपुण्य भोगावती का मालिक हो गया था। उस अवसर में धन्यकुमार ने अवधिज्ञानी मुनिराज को नमस्कार कर पूछा—भगवन्! बालक ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन पाप कर्म किया है और कैसे खोटे काम किये हैं, जिससे आज इसे यह दशा देखनी पड़ी?

मुनिराज उसकी कथा कहने लगे—जिसके सुनने मात्र से बुरे कार्यों के करने में भय होता है।

❁ ❁ ❁

इसी देश में भूतिलक नाम सुन्दर नगर था। उसमें महाधनी धनपति वैश्य रहता था। धनपति बुद्धिमान, महादानी व्रती और शुभकर्म करनेवाला था।

एक दिन उसने अपने निर्मल चित्त में विचार किया कि लक्ष्मी पुण्य के उदय से होती है। मेरी समझ में उसका फल केवल पात्रदान होना चाहिए। परन्तु जो उत्तम पात्र हैं, वे तो केवल आहार को छोड़कर और कुछ भी कभी नहीं लेते हैं और न निर्ग्रन्थ साधुओं को वस्त्र, धनादि दिये ही जा सकते हैं क्योंकि उनसे उनकी निर्ग्रन्थता में बाधा आती है।

इसलिए बड़े-बड़े ऊँचे जिनालय बनवाये जावें, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमायें बनवाई जावें और उनकी प्रतिष्ठा करवाई जावे, तो अवश्य इन शुभकर्मों के द्वारा लक्ष्मी सार्थक हो सकती है और कल्पलता की तरह इच्छित फल दे सकती है। क्योंकि देखो—

जिनमन्दिर में कितने जिनभगवान की पूजा से, कितने नमस्कार, स्तवन, दर्शन, गीत, नृत्य और वादित्र से, कितने अभिषेक से, कितने धर्मोपकरणादि के दान से, कितने उद्यापनादि से और कितने यात्रा करने से बड़े भारी पुण्यकर्म का उपार्जन करते हैं। उनमें योगिराज भी रहते हैं, उनके द्वारा धर्म की प्रवृत्ति होती है और धर्म के द्वारा भव्य पुरुष स्वर्गादि सुख के अनुभोक्ता होते हैं-इत्यादि नाना भाँति के अच्छे-अच्छे कर्मों से गृहस्थ लोग जिनमन्दिरों में पुण्य सम्पादन किया करते हैं।

इसलिए यदि यह कहा जाये कि धनी लोगों को लक्ष्मी का वास्तविक फल जिनमन्दिर का निर्माण तथा उद्धार कराना छोड़कर और कुछ नहीं है तो कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि

सहस्रों वर्ष पर्यन्त उनमें जिनप्रतिमाएँ पूजी जाया करेंगी।

जो जोग प्रतिमाएँ बनवाते हैं, उन्हें कितना पुण्यबन्ध होता होगा, उसे कौन कह सकता है? इसलिए धनी लोगों को जिनप्रतिमाएँ बनवानी चाहिए। उनके द्वारा वे स्वर्ग तथा शिव-सुख के भोगनेवाले हो सकेंगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो लोग जिन प्रतिष्ठा करवाते हैं, उनके कितना पुण्यकर्मबन्ध होता है, उसकी संख्या मैं नहीं जानता क्योंकि प्रतिष्ठा के द्वारा धर्म की वृद्धि होती है।

यही हेतु है कि प्रतिमा बनवानेवाले बहुत पुण्य कमाते हैं। कितने मिथ्यादृष्टि तो जिनप्रतिमा तथा प्रतिष्ठा करवाकर ही जैनी होते हैं और तरह नहीं। तात्पर्य यह कि जिनप्रतिमा और जिनप्रतिष्ठा पुण्य की कारण हैं, इसलिए धनिक लोग जिनालय क्यों न बनवावें?

इस विचार से धनपति सेठ ने बड़ा विशाल सुन्दर जिनालय निर्माण करवाया और सुवर्ण रत्नमयी जिनप्रतिमाएँ बनवायीं। चारों संघ को बुलाकर उन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा, विधि के अनुसार बहुत धन लगाकर करवाई और जिनालय में देने के लिये सुवर्ण और रत्नमयी श्रृंगार, कलश, प्रभृति धर्मोपकरण बनवाये।

उन रत्नमयी प्रतिमाओं की प्रसिद्धि सब जगह फैल गयी। उसे सुनकर किसी दुर्व्यसनी चोर ने लोभ में आकर विचारा कि उस जिनालय की रक्षा के लिये बहुत रक्षक नियत हैं, सो बिना साधु वेष धारण किये किसी तरह उसके भीतर नहीं जा सकूँगा।

इस प्रकार विचार कर वह मायावी लोभ के वश हो ब्रह्मचारी बन गया। कपट भाव से कायक्लेशादि तपश्चरण करने लगा और भोले लोगों में अपने गुणों की प्रशंसा करने लगा। ऐसे ही देश-देशों में घूमता हुआ मूतिलकपुर में आ पहुँचा।

जब लोगों के मुख से ब्रह्मचारी की धनपति ने प्रशंसा सुनी तो उसी समय उसके पास गया और नमस्कार कर उसे अपने मन्दिर में लिवा लाया। कुटिलात्मा ब्रह्मचारी भी झूठे तपश्चरण से लोगों को अनुरक्त करके बगुले की तरह जिनालय में रहने लगा।

किसी दिन धनपति ने पापी ब्रह्मचारी से कहा—महाराज! मुझे व्यापारार्थ दूसरे देश जाना है, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जब तक मैं वापिस न लौटूँ, आप जिनालय की रक्षा करना।

ब्रह्मचारी ने यह कहकर टाल दिया कि हम यहाँ नहीं रहेंगे (सच है कि जो लोग अन्तरंग के काले होते हैं, उनकी भीतरी बातें कौन जान सकता है)। ठीक यही हालत सरल स्वभावी धनपति की हुई। वह ब्रह्मचारी के भीतरी दिल की बात न जानकर उसके इन्कार करने पर और भी आग्रह करने लगा और किसी तरह उन्हें रक्षा का भार सौंपकर आप चला गया।

इधर मायावी ब्रह्मचारी का दाँव लग गया, सो उसने व्यसनों के द्वारा जिनालय के सब उपकरणों को तीन-तेरह कर दिये। परन्तु यह पाप कब तक छिप सकता था, सो ब्रह्मचारी के शरीर में कोढ़ फूट निकला, सारा शरीर दुर्गन्धमय हो गया, उसके द्वारा बड़ा ही दुःख होने लगा।

सच कहा है—अधिक पाप का अथवा पुण्य का फल प्रायः उसी समय उदय हो आता है। पाप का फल बहुत बुरा होता है और पुण्य का फल अच्छा होता है। पापियों को इसी भव में नाना तरह के रोगादि तथा परलोक में नरक दुःख भोगने पड़ते हैं और पुण्यात्माओं की सब प्रशंसा करते हैं, बड़ी ही प्रतिष्ठा होती है, जगत में यश फैलता है और परभव में भी उत्तम गति मिलती है।

जो लोग देव, गुरु और शास्त्र की पूजन करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं और जो पापी लोग निर्माल्य के खानेवाले हैं, वे नरक में जाते हैं। उसके वंश का सर्वनाश हो जाता है, धन चला जाता है, नाना तरह के दारुण रोग भोगने पड़ते हैं। इतने पर भी छुटकारा न होकर अन्त में उनके लिये नरक द्वार तैयार रहता है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि—हलाहल विष खा लेना बहुत ही अच्छा है, फिर उससे उसी समय भले ही प्राण चले जाएँ परन्तु निर्माल्य खाना अच्छा नहीं। कारण कि इसके द्वारा अनन्त भव बिगड़ जाते हैं।

इस बात को ध्यान में रखकर बुद्धिमानों को कभी देव-गुरु-शास्त्र का निर्माल्य नहीं लेना चाहिए किन्तु जैसे विष का उपयोग बुरा है, उसी तरह निर्माल्य भी बुरा समझकर छोड़ देना चाहिए।

ब्रह्मचारी उसी भीषण अवस्था में वहीं रहा करता था। इस समय उसकी और भी दशा बिगड़ गयी थी। सब अंग-प्रत्यंग कोढ़ के मारे गले जा रहे थे। देखने में बड़ी घृणा पैदा होती थी, आकृति भयानक हो गयी थी, हर समय रौद्र भाव बने रहते थे। संक्षिप्त में कहा जाए तो वह खासे दुःख समुद्र से डूबा हुआ था।

इतने में धनपति भी निर्विघ्न विदेश यात्रा से लौट आया। उसके देखते ही ब्रह्मचारी को बड़ा क्रोध आया। उसके मुँह से यही आह निकली कि मरा भी नहीं जो वापिस चला आया?

इतना कहकर सेठ के ऊपर दारुण रौद्रध्यान करने से उसकी वेदना और भी बढ़ गयी और इसी दशा में बड़े ही कष्ट से मर गया। मरकर निर्माल्य भक्षण के पाप से सातवें नरक में गया। वहाँ अत्यन्त दुर्गन्धित उपपाद प्रदेश में ऊपर पाँव तथा नीचे मुख होकर

उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मात्र में हुण्डक संस्थान तथा कुत्सित शरीर धारण कर पृथ्वी पर गिरा। गिरते ही पृथ्वी के आघात से पाँच सौ योजन उछला और पीछा गिरा। शरीर के खण्ड-खण्ड हो गये।*

जैसे वृक्ष से गिरकर पत्ता वायु वेग से पृथ्वी पर लौटा करता है, ठीक वही हालत इसकी नरक में थी। नरक बड़ा ही भयानक होता है, उसमें दुर्गन्ध का अन्त नहीं, एक साथ हजार बिच्छुओं के काटे की तरह दुःख होता है, चारों और वन की तरह काँटों से संकीर्ण होता है।

जब यह वहाँ देखता है तो इसे भयानक लाल-लाल नेत्र किये हुए और दारुण कर्म करनेवाले नारकी लोग दिख पड़े और ठीक ऐसी ही सर्व दुःखों की स्थान, अस्पर्शनीय, अति भयानक, नरकों की भूमि दिख पड़ी। तब यह विचारने लगा—

मैं कौन हूँ? यहाँ क्यों कर कहाँ से आया? यह स्थान इतना भीषण क्यों है? और ये भयंकर लोग कौन हैं? विचारते ही इसे विभंगा अवधि उत्पन्न हो गयी। उसके द्वारा अपने को भयंकर नरक में गिरा हुआ समझकर पूर्व जन्म के बुरे कर्मों को विचारने लगा—

हाँ! पाँच इन्द्रियों के विषय में आसक्त होकर मुझ पापी ने सात व्यसन सेवन किये थे, अभक्ष्य मधु, माँसादि खाये थे, स्वच्छन्द होकर मदिरा पान किया था, चोरी और मायाचारादि के द्वारा दूसरों का धन लूटा था, दूसरों की स्त्रियों से बलात्कार किया था, जीवों की हिंसा की थी, झूठे और कडुवे वचन बोले थे, जिनालय के उपकरणादि का हरण किया था, आर्त, रौद्र, दुर्लेश्या, बुरी

* नारकियों का शरीर पारे की तरह होता है, यह खण्ड-खण्ड होकर भी वापिस मिल जाता है।

चेष्टा और दूसरों को दुःख देना आदि दुराचारों से निरन्तर पाप उपार्जन किया था, उसी महापाप से यहाँ यह दारुण दुःख भोगना पड़ा है।

यह दुःख कितना दुरन्त और दुःसह्य है, जिसका संसार में कोई उपमान नहीं दिखता। पाप तो मैंने बहुत ही कमाया और पुण्य के कारणभूत न तो कुछ व्रत नियमादि ही पालन किये, न नमस्कार मन्त्र का ध्यान किया, न जिन पूजन की, न गुरुओं के चरणों की सेवा की, न इन्द्रियाँ वश में कीं, न उत्तम पात्रों को दान दिया और न ध्यान ही किया अथवा थोड़े में यों कहो कि शुभ कर्मों के द्वारा धर्म का लेश भी सम्पादन नहीं किया, जो उत्तम गति के सुख का कारण और दुर्गति से रक्षा करनेवाला है।

यही कारण है कि मुझे दुःख-प्रचुर और महानिंद्य दुःखरूपी समुद्र के बीच मे जन्म लेना पड़ा। हा! मैं पाप शत्रु के द्वारा पूर्णरूप से जकड़ा हुआ हूँ। मैं कहाँ जाऊँ? और किससे जाकर अपनी दुःख कहानी सुनाऊँ?

इस समय पाप का बड़ा ही दारुण उदय होने से मुझे तो यहाँ कोई रक्षक भी नहीं दिख पड़ता। हा! इस घोर दुःख-समुद्र से क्यों कर मैं पार हो सकूँगा? हा! दैव (कर्म) ने मेरे शिर पर बड़ी भारी यातना का पहाड़ गिरा दिया।

यह तो इधर अपने प्रकृत कर्मों की प्रायश्चित वहि से भीतर बाहर जल ही रहा था कि इतने में कितने नारकियों ने क्रोधित होकर इसके शरीर के मुद्‌गरादि से शस्त्रों से खण्ड-खण्ड कर दिये, कितने निर्दयी पापियों ने यह कहकर कि देख, ये वे ही नेत्र हैं न? जिससे बुरी तरह दूसरे की ओर देखा था, झट से नेत्र उखाड़

लिये। कितने दुर्बुद्धियों ने हृदय में उत्पन्न हुए पाप विकार से उसके उदर को फाड़कर सब आँतें तोड़ डालीं। कितनों ने क्रकच (करोंत) के द्वारा उसके शरीर को चीर डाला, कितने अधम शरीर के तिल बराबर खण्ड-खण्ड करके और अधिक दुःख देने लगे।

नारकियों के शरीर के टुकड़े पारे की तरह मिल जाते हैं क्योंकि जब तक आयु की स्थिति का नाश न होगा, तब तक उनकी मृत्यु न होकर ऐसी ही अवस्था होती रहेगी।

बेचारे ब्रह्मचारी के जीव का एक ओर तो वेदना से छुटकारा हुआ ही नहीं था कि इतने में कितने नारकियों ने आकर और प्रचुर दुःख देने की इच्छा से वहाँ से उठा लाकर उसे गरम तैल की कढ़ाई में डाल दिया, सारा शरीर देखते-देखते जल गया।

उसकी शान्ति के लिये वहाँ से निकलकर वैतरनी नदी के दुर्गन्धित जल में डुबकी लगाई परन्तु वहाँ भी शान्ति न मिली। क्योंकि वह जल माँस तथा खून की तरह अत्यन्त ही ग्लानिकारक होता है, उससे सन्ताप और भी अधिक बढ़ गया।

वहाँ भी जब देखा कि शान्ति नहीं है, तब इस इच्छा से कि वन में जरूर ही कुछ न कुछ आराम मिलेगा, वहाँ से चलकर वन में पहुँचा और किसी वृक्ष के नीचे बैठना ही चाहता था कि इतने में प्रचण्ड वायु चलने से खड्ग की तरह तीक्ष्ण पत्र ऊपर से गिरे। गिरते ही शरीर खण्ड-खण्ड हो गया।

वहाँ से भी उसी दशा में दूसरे वन में गया तो वहाँ वैक्रियक सिंह, व्याघ्रादि हिंस्र जीव खाने लगे, उसी समय कितने नारकी लोग और भी आकर उसे यह इशारा करके कि देख! पहले तो बहुत सी परस्त्री की जीवनी खराब की थी, और अब भी उस सुख

का अनुभव कर, ऐसा कहकर बलात् जलती हुई लोह की पुतली से आलिंग करा देते थे।

कितने संडासी के द्वारा उसके मुख को जबरदस्ती से चीर कर मद्य की तरह गरम तांबा पिलाते थे। जितने दुःसह तथा सब दुःख के कारण रोग हैं, वे सब नारकियों के शरीर में स्वभाव ही से हो जाते हैं।

उन्हें प्यास इतनी अधिक सताती है कि यदि सारा समुद्र पी जाएँ, तब भी वह न मिटै, तथापि जल की एक बूँद तक नहीं मिलती।

संसार मात्र के अन्न से भी न मिटनेवाली भूख हृदय जला देती है, परन्तु तिल मात्र तक अन्न खाने को नहीं मिलता। वहाँ शीत इतनी है कि एक लाख योजन मन का लोह पिण्ड डालते ही पानी हो जाता है, और इतनी ही अधिक गरमी रहती है।

इस प्रकार नरक में परस्पर में दिये हुए और मन-वचन-काय की बुरी वृत्ति से उपार्जन किये हुए महा पाप के उदय से शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषादि की भीषण यातनाओं का उस ब्रह्मचारी के जीव ने निरन्तर अनुभव किया। वाणी में भी उतनी शक्ति नहीं है जो नारकीय पीड़ा का वर्णन कर सके।

उस पापी ने तैतीस सागरपर्यन्त वहीं अनेक तरह के दुःख भोगे, जहाँ दुःख-समुद्र में डूबे हुए नारकियों को निमिषमात्र भी सुख नहीं होता है।

जब उसकी नरक स्थिति पूर्ण हुई, तब वहाँ से निकलकर पापोदय से स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हुआ। वहाँ भी उसने बहुत दिनों तक जीवों के भक्षण से फिर भी सप्तम नरक का पाप

उत्पन्न किया। सो आयु पूर्ण होते ही वापिस उसी नरक में गया, जिसके दु:खों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

वहाँ पहले की तरह दु:खानुभव कर निकला और भव समुद्र में-सब दु:खों की कारण त्रस तथा स्थावर योनियों में चिरकाल भ्रमण कर यही अकृत्पुण्य हुआ है।

देखो! इस अकृतपुण्य ने पूर्व जन्म में मायाचार के द्वारा पाप उपार्जन किया था, उसी के भीषण फल से इसे दारुण नरक यातना भोगनी पड़ी है। यही विचार कर बुद्धिमानों को पाप कर्म से आत्मा की रक्षा करनी चाहिए और व्रत, संयमादिक ग्रहण करने चाहिए, जिससे सुख मिल सके, यही कहने का सार है।

धर्म और अधर्म के निरूपण करनेवाले जिनेन्द्र और उसके फल को प्राप्त हुए निरुपम सिद्ध भगवान, पावन धर्म का उपदेश देनेवाले आचार्य और उपाध्याय तथा साधु—ये सब मिलकर मुझे अपने-अपने गुणों का लाभ करावें क्योंकि त्रिभुवन के राजा और महाराजा इन्हीं की स्तुति करते हैं, इसलिए ये ही स्तवन के पात्र हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में अकृतपुण्य के भवान्तर का वर्णन नाम तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।।3।।

चतुर्थ अधिकार

अकृतपुण्य के दान का वर्णन

जिनान्धर्माधिपान्वन्दे सिद्धान्धर्मफलांकितान्।
सूरींश्च पाठकान्साधून्धर्मान्धर्मप्रवर्तकान्॥

एक दिन दरिद्री और दीन अकृतपुण्य, सुकृतपुण्य के चने के खेत पर चला गया और नौकर की तरह सुकृतपुण्य से बोला—

सुकृतपुण्य! देखो ये और लोग जो चने उखाड़ रहे हैं, मैं भी इनकी तरह यदि चने उखाड़ूँ तो क्या मुझे कुछ दोगे?

उसके कातर वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा—हा! इस संसार में मनुष्यों के कर्म की विचित्रता! जो कभी स्वामी होते हैं, वे तो नौकर हो जाते हैं और जो नौकर होते हैं, वे स्वामी हो जाते हैं।

हाय! इसके पिता के प्रसाद से मेरी यह दशा हुई जो मैं धनिक और गाँव का स्वामी हो गया और यह भी उसी का पुत्र है, जिसकी आज यह दशा! जो कर्मों का मारा हुआ मुझसे भी याचना कर रहा है।

इस दुष्ट दैव को धिक्कार है, जो समयमात्र में उल्टे का सीधा और सीधे का उल्टा कर देता है। अथवा यों कह दो कि पाप के उदय से धनी, दरिद्री हो जाते हैं और पुण्य के उदय से निर्धन, धनी हो जाते हैं।

यही विचारकर जो निर्धन हैं, उन्हें तो धन लाभ के लिये पुण्य उपार्जन करना चाहिए और जो धनिक हैं, उन्हें विभव-वृद्धि के लिये सब पाप कर्म छोड़ने चाहिए।

सुकृतपुण्य ने उसकी दीन दशा देखकर उसी समय कितने ही धन के भरे हुए सुवर्ण के कलश उसे दिये, परन्तु अकृतपुण्य का पापकर्म इतना प्रचण्ड था जो हाथ में धरते हो वे अंगार की तरह जलाने लगे। उन्हें देखकर अकृतपुण्य बोला—

क्यों भाई ! सबके लिये तो तुम चने दे रहे हो और मेरे लिये ये अंगार ! ऐसा क्यों ? तब सुकृतपुण्य ने समझ लिया कि अभी इसके दारुण पाप का उदय है। क्या किया जाए ?

भाई ! मेरे अंगार तू मुझे ही दे दे और जितने चने तू ले जा सकता है, उतने गठरी में बाँधकर खेत से ले जा। उसके कहने के अनुसार अकृतपुण्य जितने चने अपने से उठ सके, उतने सिर पर धरकर घर चला गया।

चने देखकर उसकी माता ने कहा—ये चने तू कहाँ से लाया है ? उत्तर में अकृतपुण्य ने कहा—माता ! मैं सुकृतपुण्य के खेत पर गया था, वहीं से चने लाया हूँ। सुनकर माता बहुत ही दुःखिनी हुई और कहने लगी—

हाय ! जो पहले मेरा नौकर था, आज पाप के उदय से मेरा पुत्र उसी का नौकर हुआ। जो बुद्धिमान हैं, उन्हें जहाँ पूर्व अवस्था में नाना तरह के ऐश-आराम किये गये हैं, वहीं फिर नौकर की तरह रहना उचित नहीं है, ठीक वही हालत अभी मेरी है, धन प्रभुत्व सब तो नष्ट हो चुका और दरिद्रता सामने खड़ी है, इसलिए कहीं अन्यत्र ही जाना चाहिए। फिर वहाँ दुःख हो अथवा सुख ! क्योंकि पाप और पुण्य का फल बिना भोगे नहीं छूटता है।

यही विचारकर अकृतपुण्य को माता ने चने का पाथेय बनाया और पुत्र को साथ लेकर कहीं अन्यत्र जाने के विचार से प्रयाण

यात्रा कर दी, सो चलती-चलती अवन्दी देश के अन्तर्गत सीसवाक ग्राम में पहुँची और पुत्र का मार्गश्रम दूर करने के लिये ग्राम के स्वामी के गृहांगण में बैठ गयी।

स्वामी का नाम था बलभद्र। उसे देखकर बलभद्र ने पूछा—माता! तुम कहाँ से आयी हो? और यहाँ से किसलिए कहाँ जाओगी? इतना पूछने पर भी विचारी लज्जा के मारे कुछ उत्तर न दे सकी, तब बलभद्र ने फिर आग्रह के साथ पूछा—तब बोली—

भाई! पाप के उदय से जीवों को बहुधा दुःख ही उठाना पड़ते हैं। मैं दैव की मारी मगधदेश से यहाँ आ निकली हूँ और वहीं जाऊँगी, जहाँ मेरी जीविका हो सकेगी।

यह सुनकर बलभद्र बोला—यदि तुम्हारी यह इच्छा है तो यहीं रहकर मेरे घर में भोजन बनाया करो और तुम्हारा पुत्र मेरे गाय के बच्चों को वन में चरा लाया करेगा। मैं तुम्हारे लिये उचित वस्त्र-भोजन का प्रबन्ध कर दूँगा।

उसने बलभद्र के कहने को स्वीकार किया। बलभद्र ने उसके रहने के लिए अपने घर ही के पास एक छोटी-सी झोंपड़ी बनवा दी। माता-पुत्र वहीं पर रहकर उसकी नौकरी करने लगे और बलभद्र के द्वारा दिये हुए वस्त्र-भोजनादि से अपना निर्वाह करने लगे।

बलभद्र के सात पुत्र थे। उनके प्रातःकाल खाने के लिये सदा खीर का भोजन बना करता था। सो उन्हें खीर खाते हुए देखकर अकृतपुण्य भी अपनी माता से रोज-रोज खीर माँगने लगा।

माता ने उत्तर दिया—पुत्र! तू नहीं जानता कि बिना पुण्य के ऐसा उत्तम खाना नहीं मिल सकता। तूने न तो परभव में और न यहीं कुछ पुण्य कमाया है, अब तू ही कह, मैं तुझे कहाँ से खीर का

भोजन दे सकती हूँ ? देख ! उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, धन, धान्य और सुख, ये सब धर्म के बिना कभी नहीं मिलते हैं।

इसी तरह उसे उसकी माता ने बहुत समझाया तो भी वह कर्तव्याकर्तव्य को न जान सका। इसीलिए प्रतिदिन वह खीर माँगा करता था और न मिलने पर रोने लगता था। उसे रोता हुआ देखकर बलभद्र के पापी पुत्र बेचारे को थप्पड़ों से मारा करते थे।

इसी तरह मारते-मारते एक दिन उसे कहीं अधिक चोट लग गयी, सो उसका मुँह सूजकर विकृत हो गया।

अकृतपुण्य की ऐसी दशा देखकर बलभद्र ने उससे पूछा— क्यों यह मुख कैसे सूज गया है ? उसने कहा—प्रभो ! खाने को खीर माँगा करता था परन्तु था तो पाप का उदय, सो वह कैसे मिल सकती थी ? उसके बदले में आपके पुत्रों ने मेरी यह दशा की है।

यह सुनकर बलभद्र को बड़ी ही दया आयी, सो उसने अकृतपुण्य की माता से कहा दिया—तू मेरे घर से दूध, घी, चावल, शक्कर अपने घर ले जाकर खीर बनाना और उसे पुत्र को खिलाकर उसकी अभिलाषा पूरी करना।

बलभद्र के कहे अनुसार वह चावल इत्यादि अपने घर लायी और पुत्र से बोली !

पुत्र ! आज मैं तुझे खीर खाने को दूँगी, सो तू घर पर जल्दी ही आ जाना। अकृतपुण्य माता से यह कहकर कि—जैसा तुम कहती हो, वही करूँगा, गाय के बच्चों को लेकर खुशी के साथ वन में चला गया। उधर उसकी माता ने खीर बनायी। इतने में मध्याह्न होते-होते अकृतपुण्य भी घर पर आ गया। उसे वहीं बैठाकर और यह कहकर—पुत्र ! यदि कोई साधु हमारे घर पर आ जावें तो यहाँ

से जाने मत देना। उन्हें दान देकर बाद में अपन खावेंगे। दान, पुण्यप्राप्ति का कारण है। देख! उत्तम पात्र को दान देने से हम लोगों को जनम-जनम में ऐसा ही उत्तम आहार मिला करेगा और सब तरह का सुख भी मिलेगा।

उत्तम दान देने से ही गृहस्थाश्रम सार्थक होता है, दोनों लोक में सुयश फैलता है, पुण्य कर्म का बन्ध होता है। दानी लोगों को उत्तम सुख सम्पत्ति मिलती है। जिन लोगों के यहाँ उत्तम पात्रों को दान नहीं दिया जाता है, उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव की तरह है, पाप का कारण है, अशुभ है और दुर्गति को देनेवाला है।

देख! हमने पहले दान नहीं दिया, इसी से तो आज दरिद्रता का दुःख सहना पड़ा है और यही कारण है कि हमको उत्तम-उत्तम भोजन नहीं मिलता। इसलिए दान जरूर देना चाहिए, जिससे हमारा गृहस्थाश्रम और जीवन सफल होगा, साथ ही उत्तम पुण्य तथा लक्ष्मी की सम्प्राप्ति हो सकेगी-ऐसा कहकर वह जल भरने के लिये चली गयी।

इतने ही में पुण्योदय से बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्ररूप अमौल्य रत्नत्रय के आधार, दाता को सुख देने के लिये दूसरे कल्पवृक्ष, तपश्चरण के द्वारा क्षीण शरीरी, गुणराशि विराजमान, संसार के जीवों का हित करने में सदा उत्सुक, अंगपूर्वरूप समुद्र के पारगामी, ईर्यापथरूप उत्तम नेत्र के धारक, सब वस्तुओं में उदासीन, ऊँच-नीच का विचार न करनेवाले, धर्म के उपदेशक, इन्द्र, धरणेन्द्र, राजा, महाराजा और भव्य पुरुषों के द्वारा वन्दनीय, महनीय और स्तवनीय, लाभ-अलाभ, सुख-दुःखादि में समदर्शी, जितेन्द्रिय, शान्तमूर्ति, परम

कारुणिक, दिशारूप वस्त्र के धारक, धीर, अनेक ऋद्धियों से विभूषित और सर्वोत्कृष्ट महापात्र सुव्रत मुनिराज को एक महीने के उपवास के पारणा के दिन शरीर स्थिति के लिये बलभद्र के घर की ओर आते हुए पास ही में देखकर अकृतपुण्य शुद्ध मन से विचारने लगा—

अहा! ये बड़े भारी साधु हैं। देखो! इनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं हैं। ये बड़े भारी पुण्य से आये हैं। इन्हें मैं न जाने दूँ। ऐसा विचारकर सरल अकृतपुण्य पुण्य से प्रेरणा किया हुआ झट से उनके सामने जा खड़ा हुआ और अभिवन्दना कर बोला—

पूज्य! माता ने बहुत अच्छी खीर बनायी है, वह आपके भोजन के लिये दी जावेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें, तब तक जल लेकर मेरी माता भी आ जाती है। मुनिराज उसे यह समझाकर कि हमारा यह मार्ग नहीं है, रास्ते में धीरे-धीरे चलने लगे, इतने में वह भी उनके आगे होकर जोर से बोलने लगा—

तात! मेरे ऊपर दया कर थोड़ी देर ठहरो और यहाँ से न जाओ बड़ी ही अच्छी खीर बनी है। कहो तो तुम्हारा इसमें बिगड़ा क्या जाता है?

इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज न ठहरे तो अकृतपुण्य उनके पाँव पकड़कर बोला—देखो! अब तो मैंने अपने हाथों से आपको खूब ही जोर से पकड़ रखे हैं, देखूँ कैसे जा सकोगे? महाराज! आप बड़े ही दुर्लभ हैं!

आखिर में मुनीन्द्र का भी दिल कुछ करुणाद्र हो आया, सो उसे खेदित न कर थोड़ी देर तक समौन वहीं खड़े रहे। सच तो है, साधु लोग सब पर दयालु होते हैं न?

इतने ही में शुभोदय से उसकी माता भी जल लेकर आ गयी। मुनिराज को देखकर उसे बहुत खुशी हुई। जैसे दुर्लभ धन के आनायास मिल जाने से खुशी होती है।

सिर से घड़ा जमीन पर उतारकर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया, पश्चात् पड़गाहनपूर्वक दोनों ने उन्हें—घर में लिवा ले जाकर उनके विराजने को ऊँचा आसन दिया, जगद्गुरु को उस पर बैठाकर गरम जल से उनके चरणकमल धोये और उस पाद-पवित्र जल को ललाट में लगाकर उनकी पूजा की।

पश्चात् प्रणाम कर मन, वचन काय की शुद्धि से अकृतपुण्य की माता ने पुत्र के साथ-साथ बड़ा भारी पुण्य उपार्जन किया। कारण यह नवधाभक्ति पुण्य सम्पादन की हेतु है। पश्चात् श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा, इन सप्त गुणों से युक्त हो उन उत्तम पात्र मुनिराज को मधुर, प्रासुक, निर्दोष, तृप्तिकारक और तपवर्द्धक खीर का आहार प्रदान किया।

मुनिराज को आहार करते हुए देखकर अकृतपुण्य बहुत आनन्दित हुआ। उससे उसे बहुत पुण्य का बन्ध हुआ। वह विचारने लगा—

अहा! आज मैं कृतार्थ हुआ, मैं धन्य हूँ, पुण्यवान हूँ, मैं बहुत ही सुखी हुआ, आज से महादाता कहलाया, जन्म सफल हुआ, गृहस्थाश्रम भी आज ही कृतार्थ हुआ, आज मुझे बहुत ही पुण्य होगा और इसी से स्वर्गादि सुख भी मिलेगा।

देखो न! आज मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो देव, राजा, महाराजा, मनुष्य, विद्याधर, महनीय और वन्दनीय महापात्र मेरे घर में भोजन कर रहे हैं। इन्हीं पवित्र भावनाओं से शुद्ध हृदय अकृतपुण्य ने

अपने सरल भावों के द्वारा बहुत कुछ पुण्य सम्पादन कर लिया, जो स्वर्गादि सुख का कारण है।

उधर जितेन्द्रिय योगिराज ने भी खड़े-खड़े शान्त भावों से स्वाद इत्यादि का विचार न कर पाणिपात्र में आहार कर दाता को पावन किया और पश्चात् उन्हें शुभाशीर्वाद देकर आप ध्यानाध्ययन के लिये वन विहार कर गये।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि से विभूषित थे। शास्त्रों का यह लेख है कि जिस दाता के यहाँ उक्त ऋद्धिधारक साधुओं का आहार हो जाता है, फिर उस दिन उसके यहाँ भोजन सामग्री कम नहीं होती। उससे चक्रवर्ती के सैन्य तक का भोजन हो सकता है। ठीक ऐसा ही अकृतपुण्य के यहाँ ऋद्धिधारी मुनिराज का आहार होने से हुआ-भोजन सामग्री अक्षय हो गयी।

जब मुनिराज आहार करके चले गये, तब अकृतपुण्य की माता ने अपने पुत्र को यथेष्ट जिमाया और आपने भी जीमा। परन्तु देखती है कि भोजन सामग्री उतनी की उतनी है। तब उसने अपने स्वामी बलभद्र को सकुटुम्ब भोजन के लिये बुलाया और उन्हें खूब जिमाया, तब भी जब कम नहीं हुई तो सारे शहर के लोगों को जिमा दिया।

उस महादान से माता-पुत्र की बहुत ही प्रसिद्धि हुई। उन्हें सब लोग मानने लगे, चन्द्र की तरह निर्मल सुयश चारों और फैल गया, और पुण्य उपार्जन के करनेवाले कहलाये।

कुमार! सुनो-यही दान दुर्गति का नाशक है, हित का करनेवाला है। इसलिए बुद्धिमानों को दान देने में कभी आगा-पीछा नहीं करना चाहिए।

दान के द्वारा ही गृहस्थता गुणवती कही जाती है, बुद्धिमानों का प्रयत्न दान के लिये हुआ करता है, दान को छोड़कर कोई उत्तम सुख का देनेवाला भी नहीं है। समझदार ही दान देने के योग्य होते हैं, दान ही दाता के मन को अपनी ओर खींचता है, इसलिए कहना यही है कि सब लोग दान जरूर ही दिया करें।

त्रिकाल सम्बन्धी तत्त्व के विवेचन करनेवाले धर्म के अधिष्ठाता जिनेन्द्र, अन्तरहित निरूपम और लोकाग्रवासी सिद्ध, तथा महातपस्वी पंचाचार के पालनेवाले आचार्य, उपाध्याय और साधु इन सबको मैं नमस्कार करता हूँ, वह इसलिए कि महात्मा लोग अपने-अपने गुण मुझे वितीर्ण करें।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चारित्र में अकृतपुण्य के दान का वर्णन नाम चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।।4।।

पंचम अधिकार

धन्यकुमार के जन्मान्तर का वर्णन

दृक्चिद्वृत्तपोधर्मानर्ध्यरत्नमदान्सताम्।
त्रिजगत्स्वामिवन्द्याङ्घ्रीन्वन्देऽहं परमेष्ठिनः ॥

दूसरे दिन अकृतपुण्य बची हुई खीर खाकर गाय के बच्चों को चराने के लिये वन में चला गया। गरिष्ट आहार के करने से उसे निद्रा आने लगी, इसलिए एक वृक्ष के नीचे गाढ़ निद्रा-राक्षसी के बस हो गया।

उधर बच्चे उसे न देखकर स्वयं घर पर आ गये। अकृतपुण्य की माता बच्चों को देखकर विचारने लगी कि—क्या कारण है जो बच्चे तो आ गये और पुत्र नहीं आया? पुत्र की चिन्ता से दुःखी होकर रोने लगी। (बलभद्र से उसके ढूंढ़ने को कहा)

मृष्टदाना के आग्रह से बलभद्र अपने नौकरों को साथ लेकर उसके अन्वेषण को निकला। उधर जब अकृतपुण्य की निद्रा खुली तो देखता है कि बच्चे नहीं हैं। बड़ा ही व्याकुल होकर घर की ओर जा रहा था, सो दूर ही से बलभद्र को अपने सामने आता हुआ देखकर डर के मारे पर्वत पर चढ़ गया।

बलभद्र उसे देखकर घर लौट आया और अकृतपुण्य वहीं गुफा के बाहिर खड़ा हो गया।

उसी गुफा में श्रीसुव्रत मुनिराज, वन्दना के लिये आये हुये श्रावकों को व्रत का स्वरूप, भेद तथा फल सुना रहे थे, जिससे उन्हें धर्मलाभ हो सके। सो बाहर बैठा हुआ अकृतपुण्य भी सश्रद्धा सुन रहा था। उसका सार यह है—

जैसे वृक्षों का मूल उनकी मजबूती का कारण होता है, उसी तरह सब व्रत और धर्म का मूल उत्तम सम्यग्दर्शन है और वही त्रिभुवन पूज्य है। सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, देव, गुरु और शास्त्र के शंकादि दोषरहित श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सप्तव्यसन महापाप के कारण और नरक में ले जानेवाले हैं, इसलिए बुद्धिमानों को पहले इनका परित्याग करना चाहिए।

मद्य, माँस, मधु (शहद) और पंच उदम्बर फल के छोड़ने को आठ मूलगुण कहते हैं। ये मूलगुण पालन किये जाएँ और सातों व्यसन छोड़े जाएँ, वही सब व्रतों की मूल दर्शनप्रतिमा है।

पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत—ये बारह व्रत कहे जाते हैं। उनमें विकलत्रय (दो इन्द्री, तीन इन्द्री और चतुरिन्द्री) तथा पंचेन्द्रियों की मन, वचन, काय से जो व्रती पुरुष व्रत, लाभ के लिये रक्षा करते हैं, वह पहला अहिंसाणुव्रत है। यह व्रत सब धर्म तथा व्रत का बीज माना जाता है। देखो! जिन भगवान ने जितने व्रत, समिति प्रभृति के पालने का गृहस्थ तथा साधुओं के लिये जो उपदेश दिया है, वह केवल इसी एक अहिंसा व्रत के लिये है।

हितरूप, परिमित, मधुर, धर्म को लिये हुए, सन्देहरहित सब जीवों के सुख के कारण, कोमल, दूसरों की निन्दा रहित और विश्वास योग्य सत्य वचन बोलने को सत्याणुव्रत कहते हैं। यह व्रत भी विद्या, कीर्ति और पुण्य का हेतु है।

अचौर्याणुव्रत उसे कहते हैं जो पड़े हुए, भूले हुए, खोये हुए और कहीं पर रखे हुए दूसरों के धन का न लेना है। जैसे काले सर्प के पकड़ने में भय होता है, उसी तरह उससे भी धर्म की रक्षा के लिये पाप से डरनेवाले पुरुषों को डरना चाहिए। क्योंकि इससे

दूसरे लोगों को बड़ा ही दु:ख होता है। इस व्रत का फल सुखोपभोग करना है।

शुद्ध हृदय, सुशील और अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखनेवाले महात्माओं को अपने शीलव्रत की रक्षा के लिये संसार भर की स्त्रियाँ माता और पुत्री की तरह देखनी चाहिए। यही त्रिभुवनजन महनीय चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

बुद्धिमानों को लोभ कषाय घटाने के लिये धन, धान्य, सुवर्ण, प्रभृति दश प्रकार बाह्य परिग्रह का प्रमाण करना चाहिए। क्योंकि इसके द्वारा आशा दिनोंदिन बढ़ती जाती है और चिन्ता तथा दु:ख होता है। यह है बुरा। यह परिग्रह प्रमाण पाँचवाँ अणुव्रत कहा गया है।

दया तथा सन्तोष के लिये योजनादि के प्रमाण से दश दिशाओं में जाने की संख्या करना है, उसे दिग्विरतिव्रत कहते हैं।

जो निष्प्रयोजन हिंसादि पाप किया जाता है, उसके छोड़ने को अनर्थदण्डविरहित व्रत कहते हैं। अनर्थदण्ड केवल पाप का कारण है। उसके—पापोपदेश, हिंसादान, बुरा चिन्तवन, खोटे शास्त्रों का सुनना और प्रमादचर्या ये पाँच भेद हैं।

अनन्तकायिक कन्दमूलादि, सजीव फल, पुष्पादि और आचार (अथाना) ये सब भी निन्द्यनीय हैं। अत: बुद्धिमानों को छोड़ने चाहिए। एक वक्त ही सुख के कारण-अन्न पानादि भोग्य वस्तुओं का और बार-बार उपभोग में आनेवाले वस्त्र, स्त्री, प्रभृति उपभोग्य वस्तुओं का इन्द्रियरूप चोरों के वेग को रोककर शान्ति के लिये जो नियम करना है, उसे भोगोपभोग परिमाण नाम व्रत कहते हैं। यह व्रत सब सुख सामग्री का स्थान है।

शहर, गली, ग्राम आदि के द्वारा प्रतिदिन दिशाओं में गमन करने की संख्या का नियम करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

आर्त और रौद्रादि दुर्ध्यान के त्यागपूर्वक शान्तभाव से प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल में मन, वचन, काय की शुद्धि के द्वारा—अर्हत्सिद्ध, जिन वचन, जिन धर्म और साधुओं की वन्दना करने को सामायिक व्रत कहते हैं। यह व्रत धर्म का स्थान तथा पाप का निर्मूल नाश करनेवाला है।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन–सब गृहारम्भ छोड़कर और गुरु के द्वारा उपवास का नियम करके धर्म–ध्यान के द्वारा काल बिताने को प्रोषधीवास शिक्षाव्रत कहते हैं। इसका फल स्वर्गादि सुख सामग्री का मिलना है।

नियमपूर्वक प्रतिदिन पात्र दान के लिये गृहद्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और साक्षात्पात्र के मिलने पर सभक्ति दान देना, यह वैयावृत्त्य शिक्षाव्रत है।

इसके द्वारा अपना और दूसरों का हित होता है और यही सब सुख का भी कारण है। इन बारह व्रतों का निरतिचार यावज्जीवन पालन करना चाहिए और अन्तिम समय में मोह परिग्रहादि का परित्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

जब आयु के अन्त का परिज्ञान हो जाए, तब उपवासादि के द्वारा दोनों प्रकार की सल्लेखना धारण करनी उचित है। क्योंकि इसी के द्वारा तो सब व्रतादि सार्थक होकर स्वर्ग और मुक्ति–सुख के कारण होते हैं। इन्हीं बारह व्रत के पालने को दूसरी प्रतिमा कहते हैं।

तीसरी सामायिक प्रतिमा है और चौथी प्रौषधोपवास प्रतिमा है। अप्रासुक और सजीव बलकल, बीज, फल, पत्र, जल प्रभृति सहित वस्तुओं का करुणा बुद्धि से जो छोड़ना है, उसे पाँचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा कहते हैं। जिन भगवान ने इन्हें सब जीवों की हितकारक बताई हैं।

खाद्य, स्वाद्य आदि चार प्रकार के आहार का रात्रि में परित्याग करना, जिससे जीव हिंसा न होने पावे और दिन में ब्रह्मचर्य व्रत रखना (अपनी स्त्री के साथ भी दिन में विषय सेवन न करना) यह छठी रात्रि-मुक्ति-त्याग प्रतिमा का लक्षण है। इस प्रतिमा का फल आधे उपवास का होता है।

जो विरक्त महात्मा पुरुष यह समझकर कि स्त्रियाँ पुरीष के भरे कलश की तरह अपवित्र हैं, सो उन्हें दूर से ही छोड़कर सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करते हैं, यह सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा मानी गयी है। यह प्रतिमा सब सुखों की खान है और परम्परा शिव-सुख की साधन है।

जो पाप से डरकर सब प्रकार के गृह, वाणिज्य और कृषि आदि आरम्भ का अपने हित के लिए मन-वचन-कायपूर्वक परित्याग कर देते हैं, वह आठवीं आरम्भ-त्याग प्रतिमा कही जाती है। इसके द्वारा सब पापास्रव का निरोध होकर सुख मिलता है।

जो सन्तोष रूप अनुपम खड्ग के द्वारा मूर्छा राक्षसी का नाम शेष करके त्रिशुद्धिपूर्वक वस्त्रावशेष सब परिग्रह का त्याग कर देते हैं, यही नवमी परिग्रहत्याग प्रतिमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप उत्तम रत्नों की खान है।

मोक्ष-सुख के चाहनेवाले जो पुरुष विवाह, खान-पान आदि

जितने पाप के और जीवों की हिंसा के कारण घर के कर्म हैं, उनमें मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक सम्मति (सलाह) का परित्याग करते हैं, उसे अनुमति-विरति दशवीं प्रतिमा कहते हैं। जिनेन्द्र ने इसे सब सुखों की जननी कही है।

जो खण्ड वस्त्र के धारक केवल अपनी शरीर स्थिति के लिये-कृत, कारित और अनुमोदना रहित निर्दोष भिक्षावृति दूसरों के यहाँ करने जाते हैं, (वह केवल इसी इच्छा से कि तपश्चरण निर्विघ्न सधता जाए), उसे उद्दिष्ट त्याग ग्यारहवीं प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा त्रिभुवन महनीय है।

जो श्रावक लोग इन ग्यारहों प्रतिमाओं का संसार से उदासीन होने के लिये पालन करते हैं, वे वचन अगोचर सोलह स्वर्गपर्यन्त सुखोपभोग करके अथवा चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी के स्वामी होकर अन्त में नियम से मोक्ष जाते हैं।

जब अकृतपुण्य ने इन व्रतों का स्वरूप सादर सुना तो उसकी इनमें बड़ी ही श्रद्धा और भावना हो गई। अहा! ये व्रत बड़े ही उत्तम और सब सुख के देनेवाले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि मुझे जीवन में इनका लाभ हो सके! अकृतपुण्य के व्रतादि की भावनारूप उत्तम परिणामों के द्वारा जो शुभ कर्म का बन्ध हुआ, उसे स्वर्ग-सुख का साधन कहना चाहिए।

जब मुनिराज का धर्मोपदेश हो चुका, तब सब श्रावक उन्हें नमस्कार कर और 'णमो अरिहन्ताणम्' इस मन्त्रराज के आदि चरण का उच्चारण करते हुए शैल गुहा के बाहर निकले।

अकृतपुण्य भी मंत्रराज का ध्यान करता हुआ उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगा, सो इतने में उसके पूर्व-जन्म के प्रबल

पाप के उदय से उसे एक क्षुधातुर व्याघ्र ने आकर खा लिया! अकृतपुण्य मन्त्र का स्मरण करता हुआ ही ससमाधि धराशायी हो गया!

उसने जो पात्र दान प्रभृति शुभकर्मों के द्वारा पुण्य सम्पादन कर रखा था, वह इस समय काम आ गया, सो उसे सौधर्म स्वर्ग में महर्धिक देव का स्थान मिला।

देखो! अकृतपुण्य का भाग्योदय! कि कहाँ तो उसके प्रबल पाप का उदय और कहाँ दुर्लभ पात्रदान!! व्रत में शुभ भावना तथा निधि की तरह दुर्लभ मन्त्रराज की अन्त समय में प्राप्ति, जो स्वर्ग के प्रधान कारण समझे जाते हैं। अथवा यों कह दो कि जब शुभ व अशुभ जैसी गति होना होती है, तब उसी तरह की सामग्री मिल जाती है।

❁ ❁ ❁

उधर अकृतपुण्य की माता मोह के वश होकर प्रातःकाल ही बलभद्र को साथ लेकर उसको ढूँढ़ने को निकली और धीरे-धीरे उसी पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ जाकर देखती है तो प्यारे पुत्र का आधा खाया हुआ कलेवर पड़ा हुआ है। उसके देखते ही उसकी जो दशा हुई, वह अवर्णनीय थी। शोक का वेग उससे न रुका, सो कातर स्वर से मुक्तकण्ठ होकर रोने लगी।

❁ ❁ ❁

उधर अकृतपुण्य दिव्य उपपाद शय्या में जन्म लेकर मुहूर्त मात्र में पूर्ण यौवन से सुन्दर देव हो गया। वह सोते हुए की तरह उपपाद शय्या से उठा और स्वर्ग की बड़ी भारी सम्पत्ति, देव सुन्दरियाँ, अपने सामने विनम्र खड़े देवता लोग और रत्नों के बने

हुए उत्तम महल इत्यादि वैभव देखकर विचार करने लगा—

अहा! मैं कौन हूँ ? यह सुखमय स्थान किसका है ? ये दिव्य देह कौन हैं ? ये सुन्दरियाँ किनकी हैं ? और महलादि बहुत सी विभूति किसकी है ? ऐसा मेरा कौन भाग्योदय है जो मैं ऐसे सु-स्थान में लाया गया ?

इतना विचार करते ही उसे अवधिज्ञान हो गया। जिसके द्वारा पूर्व-जन्म की सब बातें जानी जा सकती हैं। उसके द्वारा यह सब महिमा उसने दानादि के फल की समझी।

उसे मालूम हुआ कि मेरी माता रो रही है, सो पहले ही धर्म-लाभ के लिये जिनमन्दिर में गया और वहाँ उत्तम-उत्तम द्रव्यों से तथा गीत वादित्रादि से जिनेन्द्र की महापूजा की, जो पुण्य के उपार्जन की कारण है। तत्पश्चात् स्वर्गीय विभूति स्वीकार कर विमान पर चढ़ा और बहुत सम्पत्ति के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया और उसे शोक से कातर देखकर बोला—

माता! तू नहीं जानती कि मैं तेरा पुत्र हूँ परन्तु पात्रदान और व्रतादि की शुभ भावना के फल से तथा नमस्कार मन्त्र के जपने से मुझे स्वर्ग में देव पद मिला है। इसलिए व्यर्थ ही अब क्यों रो रही है ? इससे तो उल्टा पाप का बन्ध होता है।

देख! स्वर्ग बड़ा ही उत्तम स्थान है, उसमें सदा ही सुख रहता है। बहुत उत्तम-उत्तम विभूति है। जहाँ दुःख का नाम तक नहीं। वहाँ के वैभव का वर्णन कुछ तुझे भी सुनाये देता हूँ—

संख्यात और असंख्यात योजन चौड़े पंच वर्ण के विमान हैं, उनमें मणिमय जिनालय, महल और शैल बने हुए हैं, इच्छानुसार दूध देनेवाली गायें हैं, कल्पवृक्ष हैं और रत्नश्रेष्ठ चिन्तामणियाँ हैं,

लावण्यरस की खान बहुत सी देव सुन्दरियाँ हैं। तो यों समझ कि उत्तम-उत्तम जितनी सुख-सामग्रियाँ हैं, वह सब एक ही जगह इकट्ठी कर दी गयी हैं।

जहाँ दुःखी, दीन, रोगी, मूर्ख, निस्तेज, कुरूप और दरिद्री तो स्वप्न में भी नहीं दिख पड़ते हैं। न दुःखप्रद ऋतु है, न शीत है, न उष्ण है और न रात्रि दिन का ही भेद है। थोड़े में यों कह दूँ कि वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दुःखजनक हो, किन्तु सदा सुखजनक साम्यकाल रहता है, उसका वर्णन करना कवि लोगों को भी जरा मुश्किल है, इत्यादि सुखपूर्ण सौधर्म स्वर्ग में मैंने बहुत पुण्य से जन्म लिया है।

यदि मैं यह भी कह दूँ कि मैं सुख-समुद्र में निवास करता हूँ तो कुछ अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसलिए माता! अब तुम शोक छोड़ो और मोहरूप शत्रु का नाश कर देव दुर्लभ संयम स्वीकार करो तो बहुत अच्छा हो।

इस प्रकार माता को समझाकर वह देव अपने स्थान पर चला गया और सुखपूर्वक रहने लगा।

मृष्टदाना अपने भूतपूर्व पुत्र के वचन सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हुई, शोक को हृदय से हटाया और विरक्त होकर फिर विचारने लगी—देखो! कितने आश्चर्य की बात है, जो थोड़े ही दानादि शुभकर्म करने से आज मेरा पुत्र कितने विभव का भोगनेवाला हुआ है तो कौन बुद्धिमान होगा जो व्रतादि शुभ आचरणों के द्वारा ऐसे कामों में प्रवृत्त न होगा? क्योंकि बार-बार मानव जन्म का मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।

इस विचार के साथ ही मृष्टदाना ने सब गृह जंजाल छोड़ा और

उसी समय अपने कल्याण के लिये जिनेश्वरी प्रव्रज्या (दीक्षा) स्वीकार की।

बेचारी मृष्टदाना थी तो स्त्री ही न? सो उसे सहसा ज्ञान कैसे हो सकता था? यही कारण है कि उसने कुछ विचार न कर अज्ञान से यह निदान कर लिया कि जन्मान्तर में भी यह मेरा प्रेम-भाजन पुत्र हो और शक्त्यानुसार जीवनपर्यन्त तपश्चरण करने लगी। अन्त में ससमाधि आयु का भाग पूर्ण कर उसी स्वर्ग में देवी हुई।

बलभद्र ने भी देव को देखकर समझ लिया कि यह सब फल धर्म का है, सो वह भी सब कुटुम्बादि को छोड़कर दीक्षित हो गया और अन्त में समाधिपूर्वक जीवन पूर्ण कर तपश्चरण के प्रभाव से उसी जगह देव हुआ।

❁ ❁ ❁

मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं—कुमार! वही बलभद्र सौधर्म स्वर्ग में बहुत कालपर्यन्त अच्छे-अच्छे सुख भोगकर अन्त में वहाँ से चलकर तुम्हारा पिता धनपाल हुआ है। मृष्टदाना का जीव तुम्हारी माता है। इसी से उसका तुम्हारे प्रति अधिक प्रेम है। और जो भूतपूर्व वत्सपाल (अकृतपुण्य) का जीव देव हुआ था, वही तुम हो।

स्वर्ग में तुमने बहुत काल तक उत्तम-उत्तम सुख भोगे हैं और अपनी सुन्दरियों के साथ-साथ जिन पूजादि शुभकर्म भी बहुत किये हैं, यही कारण है कि यहाँ भी तुम्हें वही अपूर्व सुख है और जो बलभद्र के दुष्ट सात पुत्र थे, वे ये ही सब देवदत्त प्रभृति सात भाई हैं, सो उसी पूर्व बैर के सम्बन्ध से तुमसे ईर्ष्या करते हैं, तुम्हें मारना चाहते हैं और पैंड-पैंड में जो तुम्हें खजाने मिलते और विघ्न

नष्ट होते हैं, यह सब पात्रदान का फल है। बस यही तुम्हारी जीवनी का सार है।

कुमार! यह तो तुमने अच्छी तरह जान लिया है कि—तुम्हें जो यह पूर्ण लक्ष्मी का और सौन्दर्यता का लाभ हुआ है, वह केवल पूर्वजन्म के सुपात्र दान, व्रत में उत्तम भावना और अर्हद् भगवान के नाम स्मरण का फल है। इसलिए अब भी तुम्हें उचित है कि उपर्युक्त शुभकर्मों के द्वारा धर्म सेवन करो। देखो! यही धर्म तुम्हारे अभिष्ट का देनेवाला है।

अन्त में कहना यह है कि—

जब तक तुम संसार में रहो, धर्म मत भूलो, धर्म का आश्रय लो, धर्म के द्वारा धर्म के अपूर्व सार को समझो, धर्म के लिये अभिवन्दना करते रहो, धर्म को छोड़कर किसी दूसरे की सेवा मत करो, धर्म की मूल करुणा है, उसे सदा याद रखो, धर्म में निश्चलचित्त रहो और धर्म ही से यह प्रार्थना करो कि—हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के जन्मान्तर का वर्णन नाम पाँचवाँ अधिकार समाप्त हुआ ।।5 ।।

छट्ठा अधिकार

धन्यकुमार के राज्य-लाभ का वर्णन

त्रिजगन्नाथनाथेभ्यो गरिष्टेभ्यो महागुणैः।
परमेष्टिभ्य आत्माप्त्यै विश्वार्च्येभ्यो नमोऽन्वहम्॥

धन्यकुमार, मुनिराजरूपी चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न हुए, जन्म, जरा और मरण के नाश करनेवाले तथा शिव-सुख के कारण धर्मामृत का पान कर बहुत सन्तुष्ट हुआ और साथ ही अपनी बुद्धि को धर्म में दृढ़ की।

तत्पश्चात् मुनिराज को नमस्कार कर राजगृह जाने के लिए रवाना हुआ और धीरे-धीरे वहीं पहुँचकर शहर के बाहर एक बगीचा देखा। रास्ते की थकावट मिटाने के अभिप्राय से उसके भीतर चला गया। जाकर देखता है तो सारा बगीचा सूखा पड़ा हुआ है। यहाँ पर प्रसंगानुसार कुछ बगीचे के सम्बन्ध में कथा लिख दी जाती है—

इस बाग के मालिक का नाम कुसुमदत्त था। उसका जन्म वैश्यकुल में हुआ था। यह राजकाज करनेवाले जितने लोग थे, उन सबका स्वामी था। उसे सब मानते थे।

जब उसने देखा कि बाग सारा सूख गया है तो उसे काटना चाहा किन्तु एक दिन उसे अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन हो गये। कुसुमदत्त ने उन्हें नमस्कार कर पूछा—

स्वामी! मेरा उपवन सूख गया है, सो वह फिर भी कभी फलेगा या नहीं? उत्तर में मुनिराज ने कहा—वैश्यवर! कोई पुण्यात्मा महापुरुष दूसरे देश से आकर इस बाग में प्रवेश करेगा, तभी यह फिर से फल-पुष्पादि से समृद्ध होने लगेगा।

कुसुमदत्त, मुनिराज के कहे अनुसार निश्चय कर तभी से प्रतीक्षा करने लगा, सो आज धन्यकुमार के प्रवेश मात्र से सूखे सरोवर निर्मल जल से भर गये और वृक्ष फल-पुष्पादि से नम्र हो गये। सच है, पुण्य के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है।

धन्यकुमार वहीं जिन भगवान का ध्यान कर और सरोवर में निर्मल जल पीकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ गया।

जब यह हाल कुसुमदत्त ने सुना तो उसे झट से मुनिराज के वचन याद हो आये। मुनिराज के चरणों को परोक्ष नमस्कार कर बाग में आया और कुमार को बैठा हुआ देखकर उसे नमस्कार कर पूछा—

बुद्धिमान्! क्या मुझे कुछ बातें बताकर कृतार्थ करेंगे? वे ये हैं—आप कौन हैं? किस सुकुल में आपका अवतार हुआ है और कहाँ से आप आ रहे हैं?

कुमार ने कहा—मैं वैश्य पुत्र हूँ, दूसरे देशों में घूमता हुआ इधर आ निकला हूँ और मैं जैन धर्मी हूँ।

कुसुमदत्त ने कहा—यदि ऐसा है तो मैं भी तो जैनी हूँ। आपका और हमारा धार्मिक सम्बन्ध है, इसलिए हमारे यहाँ अतिथि होना स्वीकार करिए।

धन्यकुमार ने यह बात मान ली। बाद कुसुमदत्त, धन्यकुमार को बड़े सत्कार के साथ घर लिवा ले गया और उसकी प्रेम तथा भक्ति के साथ सेवा करने के लिये अपनी स्त्री से बोला—

यह मेरी बहन का पुत्र है, इसलिए इसका अतिथि सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए। कुसुमदत्त की स्त्री ने यह समझकर कि यह मेरा दामाद होनेवाला है, इसलिए धन्यकुमार को स्नान और

भोजन इत्यादि बड़े प्रेम के साथ करवाया।

कुसुमदत्त की एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था पुष्पावती। सो वह धन्यकुमार के सौन्दर्य को देखकर उस पर मोहित हो गयी।

दूसरे दिन उसने यह विचार कर कि देखूँ यह कितना बुद्धिमान है ? सो उसके विज्ञानादि गुण की परीक्षा के लिये धन्यकुमार के सामने कुछ सुन्दर-सुन्दर फूल और सूत रख दिया। कुमार बुद्धिमान तो था ही, इसलिए उसने उन फूलों की अपनी चातुरी से बहुत सुन्दर एक माला गूँथ दी।

उन दिनों राजगृह के श्रेणिक महाराज स्वामी थे। उनकी कान्ता थी चेलनी और गुणवती नाम की पुत्री थी।

पुष्पावती उसी राजकुमारी के लिये प्रतिदिन फूलों की माला बनाकर ले जाया करती थी, किन्तु आज वह धन्यकुमार की बनायी हुई माला लेकर गयी।

उसे देखकर राजकुमारी बोली—पुष्पावती ! इतने दिन तू हमारे घर क्यों नहीं आयी ? उसने उत्तर दिया—सखी ! क्या करूँ ? मेरे घर पिताजी की बहन का पुत्र आया हुआ है, सो उसी की सेवा में लगी रहती हूँ। यही कारण मेरे न आने का है।

जब राजकुमारी की आँख उस माला पर पड़ी तो उसने पुष्पावती से पूछा—आज तो माला बड़ी ही सुन्दर दिखायी पड़ती है, कह तो किसने गूँथी है ? पुष्पावती ने कहा—

यह उसी सुचतुर भाग्यशाली का काम है। यह सुनकर राजकुमारी कुछ हंसकर बोली—तू तो बड़ी ही भाग्यशाली है जो ऐसे उत्तम वर की तुझे संगति मिलेगी।

❁ ❁ ❁

एक दिन धन्यकुमार बाजार में जा रहा था, सो चलते-चलते अपनी इच्छा से किसी सेठ की दुकान पर बैठ गया। उस समय सेठ महाशय को व्यापार में बहुत कुछ फायदा हुआ। इसका कारण उन्होंने बैठे हुए पुण्यात्मा धन्यकुमार को समझकर उससे कहा—

मित्र! मेरी एक सुन्दरी कन्या है, उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करूँगा। ठीक है—धर्मात्माओं को धर्म के द्वारा सब जगह लाभ हुआ करता है।

दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया, सो उसे भी व्यापार में फायदा हुआ। उसने भी इसका कारण धन्यकुमार ही को समझकर कहा—

भद्र! सुभद्रा नाम की एक मेरी बहिन की लड़की है, उसका विवाह तुम्हारे साथ किया जावेगा।

वहीं एक राजश्रेष्ठी रहता था। उसका नाम था श्रीकीर्ति। एक दिन उसने सारे शहर में यह ढिंढ़ोरा पिटवाया कि 'जो वैश्यपुत्र तीन काणिकी (दमड़ी) के द्वारा एक ही दिन में एक हजार दीनार पैदा करके मुझे देगा, उसके साथ अपनी धनवती पुत्री का विवाह कर दूँगा।'

ढिंढ़ोरे को सुनकर उसी समय धन्यकुमार ने काणिकी (दमड़ी) ले ली। उसके द्वारा उसने माला लटकाने के तृण खरीदे और उन्हें माली लोगों को देकर बदले में कई रंग के उनसे फूल ले लिये।

उन फूलों की अपने ही हाथों से बहुत सी सुन्दर-सुन्दर मालायें बनाकर उन्हें खेलने के लिये वन में जाते हुए राजकुमारों को दिखलायीं।

देखकर राजकुमारों ने मालाओं का जब मूल्य पूछा तो धन्यकुमार ने एक हजार दीनार कहा। जब पुण्य का उदय होता है, तब कहीं न कहीं से अपनी इच्छा के अनुसार कारण भी अवश्य मिल जाते हैं। ठीक यही धन्यकुमार के लिये भी हुआ, सो उन राजपुत्रों ने एक हजार दीनारें देकर वे सब मालायें खरीद कर लीं।

धन्यकुमार ने दीनारें ले जाकर सेठ को दे दी। सेठ ने अपना वचन पूरा करने के लिये धन्यकुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

इसी तरह बुद्धिमान धन्यकुमार की बहुत प्रशंसा सुनकर और गुप्त रीति से उसके रूप को देखकर राजकुमारी गुणवती उस पर जी जान से मुग्ध हो गई। दिनों दिन उसकी चिन्ता से उसका शरीर भी सूखने लगा।

❁ ❁ ❁

एक दिन धन्यकुमार, मन्त्री आदि बड़े-बड़े लोगों के पुत्रों के साथ जुआ खेलता था, सो उसने उन लोगों को बात की बात में जीतकर अभिमान रहित कर दिये।

वहीं पर श्रेणिक महाराज का पुत्र अभयकुमार भी बैठा हुआ था। उसे अपनी चतुरता का बड़ा घमण्ड था। उसके साथ कितने और भी धनुर्धारी योद्धा थे। सो वह धन्यकुमार के साथ बाण के द्वारा लक्ष्य वेधने के लिये झगड़ा करने लगा, पश्चात् चन्द्रकयन्त्र का वेधना निश्चित किया गया। यद्यपि इसका वेधना प्रत्येक के लिये बड़ा ही कठिन है तो भी कुमार ने पुण्य प्रभाव से उसे वेधकर देखते-देखते राजकुमार को पराजित कर दिया।

यह अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ, अतः सब मिलकर उसके

साथ वैर करने लगे और किसी तरह उसके मारने का उपाय करने लगे। बेचारा कुमार धर्मात्मा और सरल हृदय था, सो उसे इन लोगों का कपटभाव मालूम न हुआ।

उधर श्रेणिक को पुत्री के दिनों दिन दुबली होने का जब कारण मालूम हुआ तो विचार कर अपने पुत्र वगैरह से पूछा—देखो! यह कुमार रूपवान और गुणी है। इसके साथ गुणवती का विवाह किया जाना उचित है या नहीं?

उनमें से अभयकुमार आगे होकर ईर्षा से कहने लगा—वह विदेशी है, उसके कुल तथा जाति का कुछ ठिकाना नहीं! क्या मालूम अच्छे हैं या बुरे? इसलिए कन्या का देना मेरी समझ के अनुसार सर्वथा बुरा है।

अभयकुमार का कहना सुनकर श्रेणिक ने खुले शब्दों में कहा—

देखो! गुणवती के दिल में तो उसी की चाह है और इसी से वह दिनोंदिन कामाग्नि से जली जा रही है। यदि ऐसी हालत में भी उसका विवाह न किया जाए तो उसके जीने का क्या उपाय है?

अभयकुमार से आखिर में न रहा गया तो उसने साफ-साफ कह ही तो दिया—

पिताजी! इसका यह उपाय हो सकता है कि जब तक वह जीता रहेगा, तभी तक गुणवती का काम-जनित दुःख भी बढ़ेगा ही। इसलिए..... सुनकर श्रेणिक ने घृणा के साथ कहा—वह बेचारा निरपराध है, उसको मैं कैसे मरवा सकता हूँ। यह न्याय नहीं, किन्तु अन्याय है।

अभयकुमार ने फिर कहा—अच्छा, आप कुछ न करें, हम ही इसके मारने का कोई उपाय कर इसका अभिमान दूर करेंगे।

उत्तर में श्रेणिक ने किसी तरह पुत्र को समझाने के लिये कहा—वह क्या उपाय है जिससे इसे मार सकोगे?

राजकुमार बोला—

शहर के बाहर राक्षसों का एक स्थान है। पहले उसमें कितने ही लोग राक्षस के हाथ से मारे गये हैं। इसलिए जो धीर पुण्यवान इस स्थान के भीतर जाएगा, उसके लिये आधा राज्य और पुत्री दी जाएगी। शहर में ऐसा ढिंढ़ोरा पिटवाना चाहिए, सो उसे सुनकर वह नियम से अभिमान में आकर उस मकान के भीतर जाएगा और मारा जावेगा।

पुत्र के विचार के माफिक श्रेणिक ने ढ़िंढ़ोरा पिटवा दिया। धन्यकुमार ने उसे सुना, फिर भला उस मकान के भीतर गये बिना उसे कैसे चैन पड़ सकता था? उसे बहुत लोगों ने मना भी किया परन्तु उसने एक की न सुनी और दोपहर के समय खेलता हुआ बिना आयास के जैसे अपने घर में जाना होता है, उसी तरह निडर होकर राक्षस भवन में चला गया।

धन्यकुमार को देखते ही राक्षस उल्टा शान्त हो गया और और सामने आकर उसे नमस्कार किया। तत्पश्चात् सत्कारपूर्वक सुन्दर आसन पर बैठाकर विनय से बोला—

विभो! आप मुझे अपना दास समझें। मैंने इतने काल तक खजांची होकर आपके इतने बड़े भारी मकान की और धन की रक्षा की। अब आप आ गये हैं, सो अपना धन सम्हाल लीजिए। यह आप ही के पुण्य का कमाया है।

— ऐसा कहकर सब धन धन्यकुमार के सुपुर्द कर दिया 'और जब आप मुझे याद करेंगे तब हाजिर हो सकूँगा, मैं आपका दास हूँ', इतना कहकर अन्तर्हित हो गया।

धन्यकुमार ने शुभ ध्यानपूर्वक रात्रि वहीं बितायी। सच कहा है–पुण्यवानों को सब जगह लाभ ही हुआ करता है।

उधर जब उन कन्याओं को धन्यकुमार के राक्षस भवन में जाने का समाचार मिला तो सबों ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जो गति धन्यकुमार की होगी, वही हमें भी मंजूर है।

रात्रि पूर्ण हुई, सवेरे का उजाला चमकने लगा। इतने में धन्यकुमार भी प्रातःकालीन सामायिकादि क्रिया करके बहुत खुशी के साथ मकान से बाहर निकलकर शहर की ओर आने लगा।

उसे धन लेकर शहर की ओर आते हुए देखकर राजा इत्यादि को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वे अपने दिल में विचारने लगे कि यह साधारण पुरुष नहीं है किन्तु नर–केशरी है। इसे कोई नहीं जीत सकता। यह बड़ा भारी पुण्य पुरुष है।

यह समझ श्रेणिक और अभयकुमार आदि आधी दूर तक उसके सामने गये और उसे बहुत सम्मानपूर्वक लाये। पश्चात् राजमहल में लिवा जाकर भूषण वस्त्रादि से उसका सत्कार किया और पूछा—

प्रेमपात्र! कहो तो तुम किस उत्तम कुलरूप आकाश के विशाल चन्द्रमा हो और अकेले ही किस काम के लिये यहाँ आये हुए हो?

उत्तर में धन्यकुमार ने कहा—मैं उज्जयिनी में रहता हूँ और वैश्यकुल में मेरा जन्म हुआ है। तीर्थयात्रा करता–करता इधर आ

गया हूँ। यह सुनकर श्रेणिक बहुत खुश हुए और उसी समय बहुत धन खर्च कर अपने ही मकान में विवाह मण्डप तैयार करवाया और बहुत कुछ समारोह के साथ गुणवती आदि सोलह कन्याओं का धन्यकुमार के साथ विधिपूर्वक विवाह कर सानन्द उसे अपना आधा राज्य दे दिया। धन्यकुमार को मनुष्य और देव आदि सब कोई मानने लगे।

कुछ दिनों बाद धन्यकुमार ने वैश्य आदि सभी जाति के मनुष्यों से युक्त एक सुन्दर नगर बसाया और वहाँ का राजा भी आप ही हुआ। बड़े-बड़े राजपुत्र उसके चरणों की सेवा करने लगे।

धन्यकुमार सुखपूर्वक राज्य पालन करने लगा। कुमार समय-समय पर जिनधर्म की बड़ी प्रभावना किया करता था।

इस प्रकार धन्यकुमार का दर्शन उज्जयिनी में राजा मन्त्री आदि सभी लोगों को बड़ा ही सुखकर होता था। परन्तु खेद है कि उसके माता-पिता तो दिन-रात दिल के भीतर ही भीतर इसके वियोग से जल रहे थे।

❁ ❁ ❁

अब कुछ धन्यकुमार के माता-पिता का हाल सुनिये—

जब धन्यकुमार वहाँ से चला आया, उसी दिन घर के रक्षक देवता लोगों ने उसके माता-पिता और भाईयों को निकाल घर बाहिर कर दिये। वे सब वहाँ से निकलकर फिर अपने पुराने घर पर गये।

इस समय इनकी हालत बड़ी बुरी थी। ये ऐसे मालूम देते थे, जैसे दवाग्नि से जले हुए वृक्ष हों, बड़े ही शोक से पीड़ित तथा दु:ख के मारे विमूढ़ हो रहे थे।

उस समय शहर के लोग बड़े ही आश्चर्य के साथ परस्पर में कहते थे कि देखो! ये लोग कितने निर्दयी और पापी हैं—इनका हृदय वज्र की तरह बहुत कठोर है जो ऐसे सुपुत्र के चले जाने पर अभी तक जीते हैं अथवा यों कह लो कि दुःखी पुरुषों के पास मृत्यु भी आकर नहीं फटकती है क्योंकि उनके बड़ा ही खोटे कर्मों का उदय बना रहता है।

उन लोगों के अन्याय करने से थोड़े ही दिनों में जितना पुराना और नवीन धन था, वह सब जाता रहा और कुपुत्रों के तीव्र पाप से इनकी यहाँ तक दशा बिगड़ी कि खाने और पेट भरने तक की मुश्किल पड़ने लगी।

तब धनपाल किसी काम के बहाने से राजगृह निवासी अपनी बहन के लड़के (जो अधिक धनी था) शालिभद्र के पास गया। कहना चाहिए कि—अब फिर उसका भाग्य फिरा।

वहाँ जाकर धन्यकुमार के मकान के नीचे बैठकर लोगों से शालिभद्र का मकान पूछने लगा। मकान के ऊपर ही धन्यकुमार बैठा हुआ था, सो उसने देखकर उसी समय पहचान लिया कि ये मेरे पिता हैं। झट से नीचे उतरा और पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ा।

बेचारा पिता उस समय फटे-टूटे वस्त्र पहने हुए था, गरीब के समान जान पड़ता था, सेठ होने पर भी दरिद्री और उसमें कुछ भेद न था।

राज कर्मचारी और पुरवासी लोग यह घटना देखकर बड़ा आश्चर्य करने लगे।

धनपाल यह घटना देखकर बोला—नराधीश! तुम पुण्यात्मा

हो, तुम्हारा अखण्ड प्रताप है, इसलिए सुखपूर्वक बहुत काल तक पृथ्वी का पालन करो। मैं एक दरिद्री वैश्य हूँ और तुम पृथ्वी के मालिक राजा हो, इसलिए उल्टा मुझे नमस्कार करना चाहिए, न कि तुम मुझे करो। यह सुनकर धन्यकुमार बोला—

आप ही नमस्कार के पात्र हैं। कारण आप मेरे पूज्य पिता हैं और मैं आपका छोटा पुत्र हूँ। यह सुनते ही धनपाल के नेत्रों से मारे आनन्द के आँसू गिरने लगे। पुत्र को गले से लगाकर वह रोने लगा। धन्यकुमार की भी यही दशा थी। उन्हें मन्त्री आदि लोगों ने बहुत कुछ समझाया, तब भी प्रेम के आँसू का वेग उनसे रुक न सका। पश्चात् उनको किसी तरह राजमहल में ले गये।

धन्यकुमार के पिता की वस्त्राभरण और भोजनादि से सेवा कर भाईयों का चरित्र, अपने आने का हाल और राज्य के मिलने आदि की सब कुछ कथा कह सुनायी। पश्चात् माता और भाई बन्धुओं की कुशल पूछी।

उत्तर में धनपाल बोला—वे सब बड़े ही मन्दभागी हैं, इस समय उनका जीवन बुरी दशा में है, पीछे पुराने ही घर में रहने लगे हैं और पास में कुछ भी पैसा नहीं है, जो उनके द्वारा निर्वाह कर सके। जब तुम वहाँ से चले आये, उसी दिन रात्रि के समय घर के रक्षक देवता लोगों ने हम लोगों को निकाल दिया था। इसी से फिर पुराने घर का आश्रय लेना पड़ा।

हम लोगों में एक तुम ही पुण्यवान थे, इसलिए तुम्हारे निकलते ही सब धन भी तुम्हारे साथ साथ विदा हो गया। आज मैं अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूँ, जो बहुत दिन के बाद फिर तुम्हें देख पाया।

पिता के वचन सुनते ही धन्यकुमार ने अपने नौकरों को बहुत से वस्त्र इत्यादि देकर माता-भाई आदि को लिवा लाने के लिये भेजे।

जब प्रभावती आदि को धन्यकुमार के समाचार मिले तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, वे सब उसी समय वाहनों पर सवार होकर राजगृह आये। उनके आने का हाल सुनकर कुमार अपने साथ और भी कितनेक राजाओं को लेकर भक्तिपूर्वक उनके लिवा लाने के लिये आधी दूर तक सामने आया।

रास्ते में अपनी माता को आती देखकर बहुत विनय के साथ धन्यकुमार ने मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। माता भी पुत्र को देखते ही बहुत प्रसन्न हुई और उसे गले लगाकर शुभाशीर्वाद देने लगी।

भाई लोग धन्यकुमार को देखकर हृदय में बहुत शर्मिन्दा हुए। यहाँ तक कि मुँह तक ऊँचा करना उन्हें मुश्किल हो गया। धन्यकुमार उनकी यह हालत देखकर बोला—

भाईयों! यह आपकी ही दया है, जो मुझे इतनी राज्यविभूति प्राप्त हुई है। आप लोग सन्देह छोड़े और हृदय का खटका निकालकर शुद्ध चित्त हो जावें। क्योंकि कर्म के उदय से अच्छा-बुरा तो हुआ ही करता है।

धन्यकुमार का सीधापन देखकर उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपने अपराध की क्षमा कराकर अपने को धिक्कार देने लगे। तत्पश्चात् धन्यकुमार अपने कुटुम्बियों को लेकर बहुत ठाठ-बाट के साथ शहर में होकर अपने मकान पर आया। वहाँ पर

उन सबका स्नान, भोजन, वस्त्र, गहने आदि से बहुत सत्कार किया गया।

तत्पश्चात् धन्यकुमार ने गृहस्थधर्म के निर्वाह के लिये उन्हें सुवर्ण, रत्न, वाहन और ग्राम आदि सभी कुछ उचित वस्तु हर्षपूर्वक भेंट दी, जिससे वे अपना निर्वाण कर सकें।

राज्य आदि वैभव का मिलना, देवता और मनुष्यों के द्वारा सत्कार का होना और बन्धु लोगों के साथ-साथ बहुत कुछ सुख के कारण उत्तम-उत्तम भोगों का भोगना, यह सब पुण्य की महिमा है; इसलिए जो सुचतुर हैं, उन्हें जरूर ही पुण्यकर्म करना चाहिए।

देखो! धर्म गुणों का खजाना और सबका भला करनेवाला है। बुद्धिमान लोग धर्म की सेवा करते हैं, धर्म के द्वारा शुभगति होती है। धर्म मोक्ष का कारण है, इसलिए नमस्कार के योग्य है। धर्म को छोड़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं दे सकता, धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, धर्म में मैं भी अपने चित्त को लगाता हूँ, हे धर्म! अब तुझे भी उचित है कि संसार में गिरने से मुझे बचावे।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के राज्यलाभ का वर्णन नामक छट्ठा अधिकार समाप्त हुआ ॥6 ॥

सातवाँ अधिकार

धन्यकुमार का सर्वार्थसिद्धि में गमन

वीतरागजगन्नाथांस्त्रिजगद्भव्यवन्दितान्।
विश्वप्राणिहितान्वन्दे शिरसा परमेष्ठिनः ॥

एक दिन धन्यकुमार के मन में यह विचार उठा कि किसी तरह धन सफल करना चाहिए, इसलिए उसने बड़े-बड़े ऊँचे जिनमन्दिर बनवाना आरम्भ किया और उनमें विराजमान करने के लिये सुवर्ण और रत्नों की सुन्दर प्रतिमाएँ बनवायीं। चारों संघ को बुलवाकर बहुत कुछ उत्सव के साथ प्रतिष्ठा करवायी। अत्यधिक धन खर्च किया। ये सब काम उसने केवल अपने भले के लिये किये थे। धन्यकुमार प्रतिदिन अपने घर के जिन चैत्यालय में बहुत कुछ भक्ति तथा महोत्सव के साथ पूजन किया करता था और दूसरों को भी करने के लिये प्रेरणा करता था। क्योंकि जिन पूजा सब सुख की देनेवाली है।

जब मुनियों के आहार का समय आता, तब स्वयं अपने घर के आगे खड़ा होकर मुनियों की बाट देखा करता और पात्र का समागम होने पर विधिपूर्वक बड़े विनयभाव से पवित्र आहार देता। भव्य पुरुषों के साथ सदा निर्ग्रन्थ साधुओं की भक्ति, सेवा, पूजा, वन्दना किया करता। उनके मुख से श्रावक धर्म तथा मुनिधर्म का स्वरूप और तत्त्वों का व्याख्यान सुनता क्योंकि उसे विरागता बड़ी ही प्रिय थी।

जिस दिन अष्टमी तथा चतुर्दशी होती, उस दिन सब राजकाज छोड़कर नियमपूर्वक उपवास किया करता क्योंकि उसे अपने

पापकर्म के नाश करने की बहुत चाह थी। मुनि की तरह निराकुल होकर तीनों काल समताभावपूर्वक शुद्ध सामायिक करता था।

उसने शंकादि दोषों को अपने आत्मा से हटाकर और साथ ही निःशंकितादि आठ गुणों को धारण कर सम्यग्दर्शन की निर्मलता अच्छी तरह कर ली थी, क्योंकि यही शुद्धि शिव-सुख की कारण है। यह बात सब कोई मानेंगे कि ज्ञान, तीन लोक के पदार्थ को प्रगट करने के लिये दीपक है, सो धन्यकुमार भी अपने अज्ञान के हटाने के लिये बड़े-बड़े बुद्धिमानों के साथ ज्ञान का अभ्यास सदा किया करता था। अपने योग्य श्रावक के व्रतों का निरतिचार हर समय पालन करता था। दिल में धर्म तथा धर्म के चिह्नों का मनन किया करता था और सुख के लिये प्रत्येक जीव को धर्म का उपदेश दिया करता था।

अपने शरीर के द्वारा जहाँ तक उससे बनता था धर्म-पालन करने में किसी तरह की कमी नहीं रखता था। थोड़े में यों कह लीजिये कि धन्यकुमार मन, वचन, काय और कृत-कारित-अनुमोदना से धर्ममय हो गया था।

वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि धर्म से धन मिलता है, धन से काम सुख मिलता है और काम के छोड़ने से अनन्त सुख का समुद्र मोक्ष मिलता है। इसलिए अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये मन, वचन, काय से धर्म का सेवन करने में लगा रहता था। वह धर्म ही की शक्ति समझनी चाहिए जो धन्यकुमार को तब सुख की कारण राज्य-लक्ष्मी मिली थी। वह हर तरह के उत्तम-उत्तम सुख के अनुभव से सुख-समुद्र में यहाँ तक डूबा था कि समय कितना बीत गया, उसकी भी उसे खबर न रही।

एक दिन धन्यकुमार ने अपनी सुभद्रा नामक स्त्री का मुख कुछ मलिन देखकर उससे पूछा—

प्रिये! तुम क्या यह बात कह सकोगी कि आज तुम्हारा मुख किसलिए मलिन है? जाना जाता है, तुम्हें किसी शोक ने धर दबोचा है।

वह बोली—स्वामी! मेरा भाई शालीभद्र बहुत दिनों से धन कुटुम्ब, शरीर और सुख सामग्री से उदासीन हो गया है और सदा वैराग्य का चिन्तवनपूर्वक घर ही में तप का अभ्यास किया करता है, परन्तु आज यह मालूम हुआ कि वह जिनदीक्षा लेना चाहता है। विभो! उसे मैं बड़ी ही प्रेम की निगाह से देखा करती हूँ, इसलिए उसका भावी वियोग सुनकर बड़े दुखिनी हो रही हूँ।

नाथ! आपके राज्य में मुझे सब तरह का सुख मिलने पर भी केवल भाई का विरह दुःख ही दुखिनी कर रहा है। यही मेरे शोक का हेतु है।

यह सुनकर धन्यकुमार बोला—बस! यही दुःख का कारण है? अभी ही जाकर मैं उन्हें सुमधुर वचनों से समझाये देता हूँ जिससे हम सबको सुख होगा, तुम शोक छोड़ो।

उसे यों समझाकर, धन्यकुमार उसी समय अपने साले के घर गया और उसे उदासीन देखकर बोला—प्रियवर! आजकल आप हमारे घर पर क्यों नहीं आते हो? उत्तर में शालीभद्र ने कहा—मान्य! मैं क्या करूँ? संयम (मुनिपद) बड़ा ही कठिन है, इसलिए उसी की सिद्धि के लिये तपश्चरण का अभ्यास यहीं रहकर किया करता हूँ, इसी से आपके घर न आ सका।

धन्यकुमार ने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है तो

जल्दी करो। यहाँ तप का अभ्यास करने से क्या लाभ हो सकेगा? अरे! पहले भी वृषभ आदि बहुत से महात्मा वर्षादि योग के धारण करनेवाले हुए हैं और तप के द्वारा मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने भी घर में अभ्यास किया था? नहीं! किन्तु मेघ इत्यादि कुछ भी थोड़ा सा वैराग्य का कारण देखकर असंख्य वर्षों तक भोगा हुआ भी राज्य-सुख देखते-देखते निडर होकर छोड़ दिया, और तप के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष में चले गये। वास्तव में उन्हें ही पुरुषोत्तम कहना चाहिए। तुम डरपोक जान पड़ते हो, इसीलिए तप का अभ्यास करते हो।

देखो! मैं अभी ही इसी कठिन दीक्षा को भी बिना अभ्यास ही के ग्रहण किये लेता हूँ। तुम नहीं जानते कि संसार का नाश करनेवाला पापी काल न मालूम कब तुम्हें वा मुझे अथवा औरों को लिवा ले जाने के लिये चला आवेगा?

देखो! काल, गर्भ में रहनेवाले, जवान, दीन, दुःखी, सुखी, धनी और निर्धन आदि किसी की कुछ परवाह न कर सभी को अपना शिकार बना लेता है। इसलिए भाग्यवश जब तक वह न आने पावे, उसके पहिले ही जिनदीक्षा अंगीकृत कर हित के मार्ग में लग जाना चाहिए। क्योंकि जब तक जरा राक्षसी का शरीर पर अधिकार नहीं जमा है, तब तक ही मोक्ष-सुख का उपाय भी बन सकेगा और जहाँ बुढ़ापा शरीर में घुस गया, फिर तप और व्रत का पालन कोसों दूर हो जाता है।

इसलिए जो लोग संसार से छूटना चाहते हैं, उन्हें तब तक इन्द्रियाँ अपना-अपना काम अच्छी तरह कर सकती हैं, तभी तक संयम ग्रहण कर लेना उचित है। क्योंकि जिन लोगों की इन्द्रियाँ

ठण्डी पड़ जाती हैं, वे फिर संयम के योग्य नहीं हो सकते और बिना संयम के तप, व्रत इत्यादि सार्थक नहीं कहे जा सकते।

मनुष्य तो यह विचार करता रहता है कि आज या कल अथवा कुछ दिनों बाद तप और व्रत धारण करूँगा और काल है, वह पहिले से ही आ धमकता है। यह जीवन चारे के अग्रभाग पर ठहरी हुई ओस की बिन्दु की तरह जल्दी नाश होनेवाला है और युवावस्था बादल की तरह देखते-देखते नाश हो जाएगी।

लक्ष्मी वेश्या की तरह चपल और बुरी है। चोर, शत्रु और राजा इत्यादि सदा इसके छीनने की फिराक में रहते हैं। यह लक्ष्मी दुःख की देनेवाली है और दुःख ही के द्वारा कमाई जाती है। राज्य धूल के समान बुरा, सब पाप का कारण, चंचल और हजारों चिन्ताओं से भरा हुआ है। कौन बुद्धिमान ऐसे राज्य का पालन कर सुखी होगा? स्त्रियाँ मोह की बेलि, सब अनर्थ अन्याय की कारण और दुष्ट होती हैं। घर में रहना पाप और आरम्भ का स्थान है। शरीर रुधिरादि सात धातुओं से भरा, अपवित्र / दुर्गन्धित और इन्द्रियरूपी चोरों के रहने का घर है, इसे कौन भला चाहनेवाला भोगों के द्वारा पुष्ट करना चाहेगा?

भोग हर समय भले ही भोगे जाएँ, परन्तु हैं असन्तोष और पाप ही के कारण। अरे! ये होते तो स्त्री के अपवित्र शरीर ही से न? फिर क्यों कर बुद्धिमान इनके द्वारा सुख की चाह कर सकते हैं? दुःख का समुद्र और विषम यह संसार अनन्त है, चार गतियों में भ्रमण करना इसका सार है। कोई कहे तो कि बुद्धिमानों को प्रेम करने के लिये इसमें क्या उत्तम वस्तु है?

— इत्यादि हितकर और वैराग्य के वचनों द्वारा धन्यकुमार ने

शालीभद्र के रोम-रोम में वैराग्य ठसाकर उसे मुनिपद के लिये उत्तेजित कर दिया और उससे भी कहीं बढ़ा-चढ़ा स्वयं वैरागी होकर शीघ्र ही अपने घर पर गया।

शालीभद्र, धन्यकुमार का बड़ा भारी साहस देखकर सब धन और घरबार छोड़कर उसके पीछे ही घर से निकल पड़ा।

धन्यकुमार ने घर पर आकर राज्यभार तो अपने बड़े पुत्र धनपाल को सौंपा और आप श्रेणिक, माता-पिता-भाई और बन्धुओं से क्षमा कराकर शालीभद्र तथा और भी कितने ही लोगों के साथ श्री वर्धमान भगवान के समवसरण में गया।

वहाँ त्रिभुवन के स्वामी जगद्गुरु श्री महावीर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्तिपूर्वक विनीत मस्तक से नमस्कार किया और उत्तम-उत्तम द्रव्यों के द्वारा उनकी पूजा कर स्तुति करना आरम्भ की—

विभो! आप संसार के स्वामी हैं, सबका हित करनेवाले हैं, बड़े भारी गुरु हैं, बिना कारण जगत के बन्धु हैं और आप ही जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ानेवाले हैं।

नाथ! आज आपके चरणकमलों के दर्शन कर मेरे नेत्र सफल हुए और हाथ पूजन करने से।

स्वामी! आपके दर्शन के लिये यहाँ आने से पाँव भी कृतार्थ हुए और नमस्कार करने से जीवन, जन्म तथा मस्तक पावन हुआ। पूज्यपाद! आज मेरी जिह्वा आपके गुणों का गान कर सार्थक हुई और गुणों का ध्यान, चिन्तवन करने से मन पवित्र हुआ।

अनाथबन्धो! आज यह शरीर भी सफल है, जो आपके चरणों

की इसने सेवा की और हम भी धन्य हैं, जो आपकी भक्ति से सुगन्धित हुए।

भगवन! यद्यपि यह संसार अपार है परन्तु आपके आश्रय करनेवालों को तो चुल्लुभर ज्ञात होता है, क्योंकि आप इसके जहाज हैं न!

नाथ! आप अनंत गुण के स्थान हैं, आपकी स्तुति गणधर सरीखे बड़े-बड़े महामुनि भी नहीं कर सकते, तो उनके सामने हम लोग किस गिनती में हैं, जो थोड़े से अक्षरों का ज्ञान रखते हैं। इसलिए हे देव! आपको नमस्कार है, आपके अनन्त गुणों को नमस्कार है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय के देनेवाले को नमस्कार है।

विभो! आपकी स्तुति और नमस्कार का प्रतिफल तपश्चरण के साथ-साथ रत्नत्रय चाहते हैं, क्या आप दया करेंगे? अथवा हमें आप अपने ही समान बना लीजिये, फिर सम्यक्त्वादि तो सहज ही हो जावेंगे। बस यही हमारा इच्छित है और इसी के लिये आपके सामने हाथ जोड़े हुए खड़े हैं।

इस प्रकार स्तुति करके तत्पश्चात् भगवान के कहे अनुसार धन्यकुमार और शालीभद्र आदि सब महापुरुषों ने शाश्वत् मोक्षसुख के लिये बाह्य और अन्तरंग परिग्रह का तथा मोह का मन, वचन, काय की शुद्धि से परित्याग किया और मोक्ष की मातारूप जिनदीक्षा स्वीकार कर अट्ठाईस मूलगुण धारण किये।

तदन्तर पापकर्म को निर्मूल नाश करने के लिये अपनी शक्ति प्रगट कर बारह प्रकार तप करने लगे। आलस छोड़कर द्वादशांग शास्त्र पढ़ने लगे, जो अज्ञान दूरकर केवलज्ञान का कारण है। कभी

पर्वतों की गुफाओं में, कभी सूने घरों में, कभी मसान में, कभी निर्जन जगह में और कभी भयंकर वन इत्यादि में अपने ध्यानाध्ययन की सिद्धि के लिये सिंह की तरह सदा निडर और सावधान रहते हुए तरह-तरह के आसनों के द्वारा तप करते थे।

धर्मप्रचार के लिये हरेक देश, पुर, ग्राम, दुर्ग और पर्वतादि में घूमते थे। अटवी आदि में चलते-चलते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था, वहीं पर ध्यान करने लग जाते थे। क्योंकि जीवों की दया करना तो मुनियों का कर्तव्य होता है न!

जब चौमासा आता, प्रचण्ड वायु चलने लगती, चारों ओर भयंकर ही भयंकरता दिखाई देती और सर्प, बिच्छू, मच्छर आदि जीवों की बहुतायत हो जाती तो भी आप शरीर से मोह छोड़कर वृक्ष के नीचे ध्यानपूर्वक महायोग धारण करते थे।

सर्दी के दिनों में शीत से जले हुए वृक्षों की तरह होकर मैदान में अथवा नदी, तालाब के किनारों पर रहते और ध्यानाध्ययन करते। गर्मी के दिनों में सूर्य की तेज किरणों से गर्म हुई और जलती हुई अग्नि की तरह बहुत दुःसह गरम-गरम शिलाओं पर ध्यानरूप अमृत के पान से आत्मानन्द में लीन होकर सूर्य की ओर मुँह करके कायोत्सर्ग ध्यान धरते, वह केवल कर्मों के नाश करने की इच्छा में।

इसी तरह शास्त्रानुसार बहुत से कायक्लेश, अनन्त सुखमय मोक्ष की इच्छा से वे हर समय किया करते थे। क्षुधा, तृषादि महा कठिन बाईस परीषह तथा हिंसक जीवों के द्वारा दिये हुए घोर से घोर दुःख समताभाव से सहते। आर्त-रौद्रादि खोटे ध्यानों को आत्मा से हटाकर धर्म और शुक्लध्यान का गुहादि में बैठकर ध्यान

करते। इन्द्रियों को अपने वश करते, महाव्रत की शुद्धि के लिये 25 भावनाओं का, वैराग्य बढ़ाने के लिये बारह अनुप्रेक्षाओं का, धर्म वृद्धि के लिये दशलक्षण धर्म का, सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिये तत्त्वों का और मन तथा पाँचों इन्द्रियों के रोकने के लिये जैन शास्त्रों का निर्विकल्प चित्त से मनन करते थे। इत्यादि कठिन-कठिन योग और तप इन साधुओं ने जीवनभर पालन किया।

अन्त में धन्यकुमार महामुनि ने चार प्रकार के आहार तथा शरीरादि में मोह छोड़कर अकेले ही निर्जन वन में पर्वत की तरह निश्चल खड़े होकर विधिपूर्वक सल्लेखना स्वीकार की।

पहले ही क्षमादि अच्छे-अच्छे गुणों के द्वारा कषायों को घटाकर शरीर सल्लेखना करने लगे, सो थोड़े ही दिनों में उपवासादि के द्वारा सारा शरीर सुखाकर क्षुधादि परीषह विजित किये।

धन्यकुमार मुनि के मुख और होंठ आदि सभी सूख गये थे, तो भी उनमें धैय और मनस्विता थी। शरीर में केवल चमड़ा और हड्डियाँ मात्र रह गयी थीं, तब भी उनका महाबल और क्षमा-शीलपना बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करता था। कभी बहुत सावधानी से चार आराधनाओं का आराधन करते, कभी पंच परमेष्ठी पद का और कभी परमात्मा का ध्यान करते। अन्त में सब सालम्ब ध्यान छोड़कर निरालम्ब ध्यान करना आरम्भ किया।

इसी तरह शुभ ध्यान, शुभयोग, और शुभ लेश्याओं के द्वारा नव महीने तक सल्लेखना का पालन किया और अन्त में प्रायोपगमन* मरण के द्वारा ध्यान और समाधिपूर्वक प्राण छोड़कर तप तथा धर्म के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि में उपपाद शैय्या में जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त

* प्रायोपगमन मरण के समय किसी से अपना वैयावृत्त्य नहीं कराया जाता है।

मात्र में अतिशय सुन्दर शरीर के धारक अहमिन्द्र हो गये।

वह अहमिन्द्र और जो अहमिन्द्रदेव थे, उनके साथ भी अनेक तरह की धार्मिक कथा करता और कभी स्फटिकमणि के बने हुए, स्वभाव से सुन्दर अपने महलों में अथवा नन्दन वन में खेला करता। तेतीस हजार वर्ष बाद कण्ठ में झरता हुआ अमृत उसका आहार है और साढ़े सोलह वर्ष बाद उसे श्वासोच्छ्वास लेना पड़ता है। इसी तरह उत्तम-उत्तम सुख का उपभोग करता हुआ वह अहमिन्द्र सदा सुख-समुद्र में डूबा रहता है। आयु की मर्यादा पूरी होने पर यही राज्यकुल में जन्म लेकर मोक्ष जाएगा।

धन्यकुमार मुनि के अलावा शालिभद्रादि जितने भी मुनि थे, वे भी जीवनभर तपश्चरण कर और अन्त में समाधिपूर्वक प्राणों का परित्याग कर अपने-अपने तपश्चरण के अनुसार सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये।

उपसंहार

देखो! दुःखी, दरिद्री अकृतपुण्य केवल दान की भावना तथा थोड़े से दान के फल से धन्यकुमार हुआ और फिर तपश्चरण के द्वारा सर्वार्थसिद्धि में गया। इसलिए गृहस्थो! इस उदाहरण से तुम्हें भी दान देने की शिक्षा लेनी चाहिए।

गुण के खजाने धन्यकुमार मुनिराज धन्य हैं, उनके गुणों की मैं स्तुति करता हूँ और उन्हीं के बताये अनुसार मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहता हूँ, उनके लिये मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूँ, उन्हीं के द्वारा स्तुति होने की आशा है, इसीलिए उनके गुणों का ध्यानकर अपने मन को लगाता हूँ। हे महाधन्य पुरुष धन्यकुमार! क्या मुझे भी अपनी तरह धन्य न करोगे?

धन्यकुमार मुनि का यह निर्मल चरित्र है, इसे जो लोग भक्ति से पढ़ेंगे, धर्मसभाओं में वाँचेंगे अथवा सुनेंगे, वे लोग उत्तम परिणामों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले धर्म के फल से स्वर्गसुख भोगकर बाद में तपश्चरण के द्वारा रत्नत्रय युक्त हो नियम से मोक्ष-सुख के भोगनेवाले होंगे।

अन्त में मेरी निर्दोष और गुणज्ञ विद्वानों से प्रार्थना है कि वे लोग थोड़े पढ़े हुए मुझ सकलकीर्ति के द्वारा केवल भक्ति से बनाये हुए इस चरित्र का संशोधन करें।

सारे संसार के हित करनेवाले अरहन्त, अनन्त सिद्ध, पंचाचार के पालनेवाले आचार्य, अपने शिष्य लोगों को पढ़ानेवाले उपाध्याय और स्वर्ग अथवा मोक्ष के लिये उपाय करनेवाले तथा कठिन-कठिन तपश्चरण करनेवाले साधु लोग मुझे मोक्ष का कारण मंगल प्रदान करें, मैं उनकी स्तुति वन्दना करता हूँ।

इस चरित्र के सब श्लोक मिलाकर साढ़े आठ सौ होते हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार का सर्वार्थसिद्धि में गमन वर्णन नाम सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ ॥7 ॥

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.